श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा का एकमात्र हिंदी मासिक

७ अंक : १ जनवरी : १९८८

विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार हाँटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संत तुकाराम महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगाँव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर मिश्र—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी—दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा—कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम बिलास चौधरी—मुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशवदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गठोडिया—अपर बाजार (राँची)
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगाँव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—मदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति, अमरावती, महाराष्ट्र
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्री रामकृष्ण ने कहा		१
२. भजन	श्री सारदा तनय	२
३. एक स्वर : एक झंकार	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. विवेकानन्द तुम्हें सम्बोधित करते हैं	स्वामी विवेकानन्द	७
५. विवेकानन्द : आत्माओं के उद्बोधक	स्वामी रंगनाथानन्द	१०
६. स्वामी विवेकानन्द और जनसाधारण	स्वामी सत्यरूपानन्द	१२
७. शान्ति कविता।	स्वामी विवेकानन्द	१८
८. स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग का वैशिष्ट्य	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१९
९. विद्यालयों में नैतिक और धार्मिक शिक्षा	स्वामी हर्षानन्द	२४
१०. योग, योगी और युक्त	स्वामी वेदान्तानन्द	२५
११. उद्भ्रान्त युवक : मेरी समझ	श्री रविशंकर प्रसाद	२९
१२. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—७ जनवरी—१९८७ अंक—१

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मैंने देखा (भावावस्था में), केशव जिस प्रकार एक शक्ति के विकास के द्वारा संसार में विख्यात हुआ है, नरेन्द्र (बाद में स्वामी विवेकानन्द) के भीतर उस प्रकार की अठारह शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। फिर देखा, केशव और विजय का हृदय दीपशिखा के समान ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल बना हुआ है। बाद में नरेन्द्र के भीतर देखा—ज्ञानसूर्य ने उदित होकर माया-मोहरूप अज्ञान को वहाँ से अपसारित कर दिया है।

(२)

स्त्रियों के आदर-यत्न से वह व्यक्ति बिल्कुल पिघल जाता है, परन्तु नरेन्द्र कभी वैसा नहीं होता। मैंने विशेष ध्यान देकर देखा है, वैसे क्षेत्र में मुँह से कुछ न कहने पर भी उसका भाव देखकर लगता है मानो वह असन्तुष्ट होकर मुँह फेरते हुए कह रहा है, 'ये लोग यहाँ क्यों?'

(३)

(अपना शरीर और नरेन्द्र का शरीर क्रमशः दिखाकर) 'देखता हूँ कि यह मैं ही हूँ। सच कहता हूँ—कुछ भी भेद नहीं देख पा रहा हूँ! जैसे गंगा के जल में एक लाठी का आधा भाग डुबा देने से दो भाग दिखायी पड़ते हैं।—पर यथार्थ में दो भाग नहीं है; एक ही हैं। समझा?

(४)

नरेन्द्र लोक शिक्षा देगा।

भजन

श्री सारदा तनय,
नागपुर

१. (हमीर—तीनताल)

जय-जय स्वामी विवेकानंद ।
जय वीरेश्वर भ्रमहर भास्कर, आशुतोष शिव, जय सुखकंद ॥
त्रिभुवन-पावन नरनारायण, विमल बोधधन ब्रह्मपरायण ।
भवभयवारण जगदुद्धारण, नित्य-मुक्त जय गतभवबंध ॥
युगनायक युगधर्मसहायक, चित्त प्रकाशक शुभमतिदायक ।
मोहपुंजहर मोक्षविधायक, वीर धीर निर्भय स्वच्छंद ॥
निद्रितचित्त-प्रबोधनकारी, मुग्धजीव-जड़ता-परिहारी ।
रामकृष्ण-लीलासहचारी, नाश करो प्रभु भवदुखद्वंद ॥

२. (शंकरा—तीनताल)

जयतु विवेकानंद योगिवर युगाचार्य यतिराज ।
जय वीरेश्वर जय शिव शंकर, जय जय जय महाराज ॥
ध्यानपरायण नरनारायण तज अखंड का राज ।
जीवदुखहरण करत अवतरण, धर संन्यासी साज ॥
मोहतिमिरहर प्रखर दिवाकर उदित जगतहितकाज ।
तम नाशत, जड़ चित्त जगावत, चेतत सकल समाज ॥
मूर्तविवेक-विराग-ज्ञान-बल, त्रिभुवन के सिरताज ।
सकल अविद्या-भ्रांति हरो प्रभु, चित में करो विराज ॥

सम्पादकीय सम्बोधन

एक स्वर : एक झंकार

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

सन् १९८८ का पदार्पण हो गया है। इस ११ जनवरी (अँग्रेजी तिथि के अनुसार १२ जनवरी) को विश्ववंद्य युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द के पावन अवतरण के १२५ वर्ष पूरे हो रहे हैं। हम आह्लादित हैं। यह हमारे आनन्द-उल्लास और उत्सव का वर्ष है। और स्वामीजी के ही दिव्य सन्देशों से प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण कर विवेक शिखा का प्रकाशन हुआ था। इसके छः वर्ष पूरे हुए। अपने जीवन के सातवें वर्ष में इसी अंक के साथ यह प्रवेश कर रही है। यह हमारे लिए दुहरे आह्लाद का विषय है। उल्लास की अतिशयता भावुकता का संकेत भी कर सकती है। पर हम अभी भावुक नहीं हो रहे हैं। हमारी प्रसन्नता के कारण हैं।

स्वामी जी ने एक बार कहा था—"मैं आकार रहित एक आवाज हूँ।" हाँ, वे एक आवाज थे, एक शाश्वत अमिट दैवी आवाज, एक कभी न विलीन होने वाली सुगंध, एक अखंड अनाहत संगीत। "संगीत क्या है, इसे कोई तब तक नहीं जान सकता जब तक वह उनकी (स्वामी विवेकानन्द की) अद्भुत आवाज न सुन ले"—लिखा है भगिनी क्रिश्चिन ने।

और वह आवाज क्या है? सत्य, चिरंतन सत्य, अनुभूत सत्य का अनवरत अथक उद्घाटन। वे किसी एक धर्म के प्रस्तोता नहीं थे, किसी सम्प्रदाय या दर्शन-विशेष के प्रचारक या व्याख्याता नहीं थे। वे शुद्ध सनातन सत्य की निरंजन वाणी थे। "यदि हिन्दू धर्म के दूत के रूप में उनका कुछ अपना होता, तो स्वामी विवेकानन्द जो कुछ थे, उससे कम महान् सिद्ध हुए होते। गीता के कृष्ण की भाँति, बुद्ध की भाँति, शंकराचार्य की भाँति, भारतीय चिन्तन के अन्य प्रत्येक महान् विचारक की भाँति, उनके वाक्य भी वेदों और उपनिषदों के उदाहरणों से परिपूर्ण हैं। भारत के पास जो अपनी ही निधियाँ सुरक्षित हैं, भारत के ही प्रति उनके मात्र उद्घाटक और भाष्यकार के रूप में ही स्वामीजी का महत्त्व है। यदि वे कभी जन्म ही न लेते, तो भी जिन सत्यों का उपदेश उन्होंने किया वे वैसे सत्य बने रहते। यही नहीं, वे सत्य उतने ही प्रामाणिक भी बने रहते। अंतर केवल होता, उनकी प्राप्ति की कठिनाई में, उनकी अभिव्यक्ति में आधुनिक स्पष्टता और तीक्ष्णता के अभाव में और उनके पारस्परिक सामंजस्य एवं एकता की हानि में। यदि वे न होते, तो आज सहस्रों लोगों को जीवनदायी संदेश प्रदान करनेवाले वे ग्रन्थ पंडितों के विवाद के विषय ही बने रह जाते। उन्होंने एक पंडित की भाँति नहीं, एक अधिकारी व्यक्ति की भाँति उपदेश दिया। क्योंकि जिस सत्यानुभूति का उपदेश उन्होंने किया, उसकी गहराइयों में वे स्वयं ही गोता लगा चुके थे और रामानुज की भाँति उसके रहस्यों को चांडाल, जाति-बहिष्कृत और विदेशियों को बतलाने के निमित्त ही वे वहाँ से लौटे थे।"—भगिनी निवेदिता का विवेकानन्द के विषय में यह व्याकरण है।

वस्तुतः सत्य ही उनकी राजनीति थी, सत्य ही उनका संगीत था और सत्य ही उनका संदेश था। प्रत्येक समाज, राष्ट्र और प्रत्येक युग को इस सत्य की माँग होती है। अपनी रक्षा के लिए, अस्तित्व और अस्मिता के लिए सदा से यह सृष्टि इसी सत्य की पिपासा लिये अपनी अँजुरी फैलाये रहती है। बुद्ध और ईसा की भाँति इसी सत्य का स्वर लेकर इतिहास की अनिवार्यता से

विवेकानन्द भी इस धराधाम पर अवतरित हुए थे।

और सत्य की जो दीप-शिखा स्वामीजी ने प्रज्वलित की थी उसी का अमल स्वच्छ आलोक बिखेरने का एक विनम्र प्रयास विगत छः वर्षों से विवेक शिखा करती आ रही है। हमें प्रसन्नता है कि यह आलोक धीरे-धीरे देश के उन कोनों में फैलता जा रहा है जहाँ एक तरह का अबतक अंधकार था। यह आलोक लोगों को उद्भासित करता है, प्रेरित करता है, नयी चेतना से स्फूर्त करता है। हमें कई लोगों के पत्र आते रहते है—कृतज्ञता के, धन्यवाद के, प्रसन्नता के।

हम अपने सदाशय पाठकों के आभारी हैं। हम आभारी हैं उन तमाम लोगों के जो इस शिखा को प्रज्वलित बनाये रखने के अथक प्रयास करते रहे हैं। रामकृष्ण मिशन के उन साधुओं को हम धन्यवाद नहीं दे सकते जिनके सत्प्रयास ने निराशा के क्षणों में हमें सम्बल प्रदान किया है—कई रूपों में। स्वामीजी की एक कविता की पंक्तियाँ हैं—

सुन्दरता वह है : जो देखी न जा सके।
प्रेम वह है, जो अकेला रहे।
गीत वह है, जो जिये, बिना गाये,
ज्ञान वह है, जो कभी जाना न जाय।

मेरी श्रद्धा भी उन सब के प्रति ऐसी ही है, जिसकी अभिव्यक्ति नहीं है।

स्वामीजी के स्वर-आलोक को आज जन-जन के बीच फैला देने की जरूरत है—नगरों में, गाँवों में, पिछड़े लोगों में, गिरिजनों में, हरिजनों में, आबाल वृद्ध नर-नारियों में। जितनी तेजी से यह आलोक फैलेगा, उतनी तेजी से हमारे देश का विकास होगा।

कैसा है वह आलोक? क्या है वह स्वर-संदेश? भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसकी ओर संकेत करते हुए एक जन सभा में कहा था—"पता नहीं कि आज की पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं। पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था।.....अगर आप स्वामी विवेकानन्द के लेखों और व्याख्यानों को पढ़ें तो आप यह विचित्र बात पायेंगे कि वे पुराने नहीं हैं। ये कुछ वर्ष पहले कहे गये थे और वे आज भी ताजे हैं क्योंकि, उन्होंने जिस विषय पर लिखा या कहा, वे हमारी या विश्व की समस्याओं के मूलभूत तत्त्वों और पक्षों पर प्रकाश डालते हैं। इसी से वे पुराने नहीं हुए हैं वे ताजे हैं, भले ही आप उन्हें अभी पढ़ें।..... वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे, और आगे चलकर जिन लोगों ने आन्दोलन में थोड़ा या बहुत सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक के प्रेरणा स्रोत स्वामी विवेकानन्द थे।"

सचमुच आज स्वामी जी के शब्दों को सुनने की, गुनने की, मनन करने और जीवन में उतारने की जरूरत है।

हमारा देश आज अनेक समस्याओं से घिर गया है। अपराध बढ़ रहे हैं। हिंसा उभर रही हैं। अनुशासन और संयम टूट रहे हैं। मूल्य और मर्यादाएँ खंडित हो रही हैं। नीति विघटित हो रही है। राजनीति हावी हो रही हैं। लोग पूछते हैं, ऐसे परिवेश में स्वामी जी का क्या संदेश है? एक घटना है—

सन् १८९७ में स्वामी जी चार वर्षों तक अमेरिका और इंगलैंड की यात्रा के बाद भारत वापस आ रहे थे। साथ में निवेदिता थीं। उन्होंने कहा—'स्वामीजी आपका देश काफी नैतिक है, बहुत आचारपूर्ण।' 'तुम कैसे यह कहती हो'—स्वामी जी ने पूछा। उन्होंने उत्तर में कहा—'क्योंकि भारत में अपराध नहीं होते, जब कि हमारे देश में, इंग्लैंड और अमेरिका में, इतने अपराध होते हैं।'

कोई दूसरा राष्ट्रभक्त होता तो इस अभ्युक्ति से प्रसन्न हो जाता। पर स्वामीजी ने एक लम्बी साँस

खींचते हुए कहा—'मैं तो दूसरी ही तरह सोचता हूँ। मैं सोचता हूँ, काश मेरे देश में कुछ अपराध होते।'

यह वाणी निरर्थक नहीं है। तात्पर्यपूर्ण है। पेड़-पौधे अपराध नहीं करते। दीवार हिंसा नहीं करती। तो क्या ये प्रशंसनीय हैं? नहीं, इनके सामने विकल्प नहीं है। ये जड़ हैं। तमस में डूबे हैं। स्वामीजी चाहते थे, भारत का तमस मिटे, तंद्रा टूटे, नींद खत्म हो। इसमें जागरण आये, रजस आये, स्पन्दन आये। आज भारत में रजस आ गया है। इसमें ऊर्जा आयी है। अब यह अपराध करने लगा है। यह एक ओर कुछ अच्छे कार्य करने लगा है, दूसरी ओर कुछ बुरे कार्यों में भी हाथ लगा रहा है। यह घबड़ाने की स्थिति नहीं है। हमारा देश मानव विकास की एक अनिवार्य स्थिति से गुजर रहा है। किन्तु यह चरम अवस्था नहीं है। रजस ठीक है, पर अंतिम ध्येय नहीं। इसे सत्व में रूपान्तरित होना होगा। आज स्वामी जी हमारे बीच होते तो कहते, 'मेरे बच्चो, तुमने अच्छा किया है। तुमने अपने रजस का, अपनी ऊर्जा का उद्घाटन किया है। अब तुम नींद में नहीं हो, तमस में नहीं हो। तुम गरीबों की सेवा कर रहे हो, शिक्षा का प्रसार कर रहे हो, वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे हो, खेल-कूद में हिस्से ले रहे हो। यह सब ठीक है। तुम अपराध भी कर रहे हो, चलती रेलगाड़ी पर पत्थर फेंकते हो, बैंक लूटते हो, बसें जलाते हो, स्कूल-कॉलेजों में उत्पात करते हो। यह ऊर्जा का ऋणात्मक पहलू है। ठीक है, तुमने साबित कर दिया है कि अब तुम जग गये हो। लेकिन अब इस ऊर्जा को नियंत्रित कर, इसे रचनात्मक रूप दो, इसे मानव-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण में लगाओ।

सही अर्थों में आचारपूर्ण और नैतिक होने का यही रास्ता है। ऊर्जा चाहे प्राकृतिक हो या मानवीय, उसका संयमन कर उसे एक धारा या दिशा प्रदान कर हम उससे महत्तम और अद्भुत कार्य ले सकते हैं। यही है रजस का सत्व में रूपान्तरण, ऊर्जा का मानव विकास में परिष्करण। जैसे तेलशोधक कारखाने में धरती के तल से कच्चा अपरिष्कृत तेल निकाल कर पहले उसका शोधन या परिष्करण किया जाता है फिर उससे सुन्दर और उपयोगी पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन किया जाता है, वैसे ही हमारे देश में जो अपार यौवन-ऊर्जा आज अपरिष्कृत रूप में उपलब्ध है, उसका शोधनकर, परिष्करणकर, उससे सुन्दर और उपयोगी चरित्र का उत्पादन किया जा सकता है। यह हमारे देश के लिए आज अहम जरूरी है। अपने राष्ट्र के सर्वाङ्गीण विकास के लिए इस मानव-ऊर्जा का चरित्र-ऊर्जा में रूपान्तरण आवश्यक है। इसी से स्वामी जी कहा करते थे—मनुष्य (चारित्रिक ऊर्जा से सम्पन्न) निर्माण करना ही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। उनकी यही आकांक्षा थी—'मनुष्य, केवल मनुष्य चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जायगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी श्रद्धासम्पन्न और दृढ़ विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जायँ तो संसार का कायाकल्प हो जाय। पहले उनका जीवन-निर्माण करना होगा, तब कहीं काम होगा।

इस अपार मानव संसाधन का चरित्र ऊर्जा में शोधन करने से 'मनुष्य में अन्तर्निहित देवत्व' की अभिव्यक्ति हो सकेगी। ऐसा मनुष्य राजसिकता से सात्विकता में प्रतिष्ठित होकर पूर्णत्व को प्राप्त करेगा और तब वह हिंसा, लूटपाट और अपराध आदि की दुष्प्रवृत्तियों से मुक्त हो जायगा।

हमारा देश आज भी जात-पाँत, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब आदि के भेदों की चट्टान के नीचे पिस रहा है। हरिजनों और गिरिजनों पर सबलों के अत्याचार बढ़ रहे हैं। पिछड़े लोगों का शोषण अब तक नहीं रुका है।

स्वामी जी ने अपने देशवासियों को एक मंत्र दिया है—प्रेम-मंत्र। वे कहते हैं—"प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाई—मनुष्य जाति को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूँढ़ने चले हो—ये सब गरीब, दुःखी, दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नहीं हैं? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते? गंगा तट पर कुआँ खोदने क्यों जाते

हो ? प्रेम की असाध्यसाधिनी शक्ति पर विश्वास करो।" यह आवाज, यह स्वर झंकार है स्वामी विवेकानन्द की।

और एक आवाज। और एक उद्बोधन। इन पिछड़े कमजोर, नीच वर्ग के लोगों के अभ्युत्थान के लिए स्वामी जी में एक अकल्पनीय भावना थी, अपरिसीम आकांक्षा थी। उन्होंने दर्द से भरकर शंखनाद किया—"हमारे अभिजात पूर्वज साधारण जनसमुदाय को जमाने से पैरों तले कुचलते रहे। इसके फलस्वरूप वे बेचारे एकदम असहाय हो गये। यहाँ तक कि वे अपने आप को मनुष्य मानना भी भूल गये।"

फिर कर्त्तव्य-बोध कराते हुए उन्होंने कहा—'भारत के इन दीन हीन लोगों को, इन पददलित जाति के लोगों को, उनका अपना वास्तविक रूप समझा देना परमावश्यक है। जात-पाँत का भेद छोड़कर, कमजोर और मजबूत का विचार छोड़कर, हर एक स्त्री-पुरुष को, प्रत्येक बालक बालिका को, यह सन्देश सुनाओ और सिखाओ कि ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और बड़े-छोटे, सभी में उसी एक अनन्त आत्मा का निवास है, जो सर्वव्यापी है; इसीलिए सभी लोग महान् तथा सभी लोग साधु हो सकते हैं। आओ हम प्रत्येक व्यक्ति में घोषित करें—उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत—'उठो, जागो और जब तक तुम अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच जाते, तब तक चैन न लो।'

और उन्होंने पिछड़ी जाति के लोगों को एक उपाय बताया—'ऐ पिछड़ी जाति के लोगो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे बचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एक मात्र उपाय संस्कृत पढ़ना है, और यह लड़ना-झगड़ना और उच्च वर्गों के विरोध में लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार न होगा, इससे लड़ाई-झगड़े और बढ़ेंगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही जिसके टुकड़े टुकड़े हो चुके हैं, और भी टुकड़ों में बँटती रहेगी। जातियों में समता लाने के लिए एकमात्र उपाय उस संस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्गों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायगा।'

महात्मा गाँधी ने कहा था..."मैंने स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों को बहुत अच्छी तरह पढ़ा है। फल स्वरूप अपने देश के प्रति मेरा जो प्रेम था, वह हजारगुना बढ़ गया है।' चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने लिखा—'वे न होते, तो हम अपना धर्म गँवा बैठते और आजादी नहीं पा सकते थे। अतएव, हम सभी बातों के लिए विवेकानन्द के ऋणी हैं।' डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—'ऐसे अतिमेताओं का डूबती हुई मानवता को उठाने के लिए पृथ्वी पर आगमन बार-बार नहीं हुआ करता। स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही अति महान् आत्माओं में एक थे।' श्रीमती इन्दिरा गाँधी का कथन है—'मैं यथार्थतः कह सकती हूँ कि स्वामी विवेकानन्द के वचनों ने मेरे सारे परिवार को, हमारे राजनैतिक कार्यों के लिए ही नहीं, हमारे दैनन्दिन जीवन के लिए भी अत्यधिक प्रेरणा प्रदान की है।' वस्तुतः स्वामीजी की दैवी वाणी के सम्पर्क में जो भी आयगा उसका जीवन रूपान्तरित हुए बिना न रहेगा।

आज अपने लिए और अपने देश के लिए हमें स्वामीजी की उस दिव्य वाणी को, उस चेतना से भरी स्वर झंकार को सुनना ही पड़ेगा। स्वामीजी के १२५ वें जन्म दिवस पर उनसे हमारी यह आन्तरिक प्रार्थना है कि वे हमें अपनी सनातन स्वर झंकार से प्रेरित-उत्प्रेरित कर पूर्ण मनुष्यत्व प्रदान करें। उनके पाद-पद्मों में हमारी श्रद्धापूर्ण प्रणति है।

विवेकानन्द तुम्हें सम्बोधित करते हैं

[श्री आलासिंगा पेरुमल आदि मद्रासी शिष्यों को लिखित एक प्रेरक पत्र ।]

न्यूयार्क
१८ नवम्बर, १८९४

वीरहृदय युवको !

तुम्हारा ११ अक्तूबर का पत्र कल पाकर बड़ा ही आनन्द हुआ। यह बड़े सन्तोष की बात है कि अब तक हमारा कार्य बिना रोक-टोक के उन्नति ही करता चला आ रहा है। जैसे भी हो सके, हमें संघ को दृढ़प्रतिष्ठ और उन्नत बनाना होगा, और इसमें सफलता मिलेगी—अवश्य मिलेगी। 'नहीं' कहने से न बनेगा। और किसी बात की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल प्रेम, निश्छलता और धैर्य की। जीवन का अर्थ ही वृद्धि अर्थात् विस्तार यानी प्रेम है। इसलिए प्रेम ही जीवन है, यही जीवन का एकमात्र नियम है, और स्वार्थ परता ही मृत्यु है। इहलोक एवम् परलोक में यही बात सत्य है। परोपकार ही जीवन है, परोपकार न करना ही मृत्यु है। जितने नरपशु तुम देखते हो, उनमें नब्बे प्रतिशत मृत हैं, वे प्रेत हैं, क्योंकि मेरे बच्चो, जिसमें प्रेम नहीं है, वह जी भी नहीं सकता। मेरे बच्चो, सबके लिए तुम्हारे दिल में दर्द हो—गरीब, मूर्ख एवं पददलित मनुष्यों के दुःख को तुम महसूस करो, तब तक महसूस करो, जब तक तुम्हारे हृदय की धड़कन न रुक जाय, मस्तिष्क चकराने न लगे, और तुम्हें ऐसा प्रतीत होने लगे कि तुम पागल हो जाओगे—फिर ईश्वर के चरणों में अपना दिल खोलकर रख दो, और तब तुम्हें शक्ति, सहायता और अदम्य उत्साह की प्राप्ति होगी ! गत दस वर्षों से मैं अपना मूलमंत्र घोषित करता आया हूँ—संघर्ष करते रहो। और अब भी मैं कहता हूँ कि अविराम संघर्ष करते चलो। जब चारों ओर अन्धकार दीखता था, तब मैं कहता था—संघर्ष करते रहो; अब जब थोड़ा-थोड़ा उजाला दिखायी दे रहा है, तब भी मैं कहता हूँ कि संघर्ष करते चलो। डरो मत मेरे बच्चो। अनन्त नक्षत्रखचित आकाश की ओर भयभीत दृष्टि से ऐसे मत ताको, जैसे कि वह हमें कुचल ही डालेगा। धीरज धरो। देखोगे कि कुछ ही घंटों में वह सबका सब तुम्हारे पैरों तले आ गया है। धीरज धरो, न धन से काम होता है; न नाम से, न यश काम आता है, न विद्या; प्रेम ही से सब कुछ होता है। चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारें तोड़कर अपना रास्ता बना सकता है।

अब हमारे सामने समस्या यह है—कि स्वाधीनता के बिना किसी प्रकार की उन्नति संभव नहीं। हमारे पूर्वजों ने धार्मिक विचारों में स्वाधीनता दी थी और उसी से हमें एक आश्चर्यजनक धर्म मिला है। पर उन्होंने समाज के पैर बड़ी बड़ी जंजीरों से जकड़ दिया और इसके फलस्वरूप हमारा समाज, एक शब्द में, भयंकर और पैशाचिक हो गया है। पाश्चात्य देशों में समाज को सदैव स्वाधीनता मिलती रही, इसलिए उनके समाज को देखो। दूसरी तरफ उनके धर्म को भी देखो।

उन्नति की पहली शर्त है स्वाधीनता। जैसे मनुष्य को सोचने-विचारने और उसे व्यक्त करने की स्वाधीनता मिलनी चाहिए, वैसे ही उसे खान-पान, पोशाक-पहनावा विवाह-शादी, हरेक बात में स्वाधीनता मिलनी चाहिए, जब तक कि वह दूसरों को हानि न पहुँचाये।

हम मूर्खों की तरह भौतिक सभ्यता की निन्दा किया करते हैं। अंगूर खट्टे हैं न ! उस मूर्खोचित बात को मान

लेने पर भी यह कहना पड़ेगा कि सारे भारतवर्ष में लगभग एक लाख नर-नारी ही यथार्थ रूप से धार्मिक हैं। अब प्रश्न यह है कि इतने लोगों की धार्मिक उन्नति के लिए भारत के तीस करोड़ आधिवासियों को बर्बरों का सा जीवन व्यतीत करना और भूखों मरना होगा? क्यों कोई भूखों मरे? मुसलमानों के लिए हिन्दुओं को जीत सकना कैसे सम्भव हुआ? यह हिन्दुओं के भौतिक सभ्यता का निरादर करने के कारण ही हुआ। सिले हुए कपड़े तक पहनना मुसलमानों ने इन्हें सिखलाया। क्या अच्छा होता, यदि हिन्दू मुसलमानों से साफ ढग से खाने की तरकीब सीख लेते, जिसमें रास्ते की गर्द भोजन के साथ-न मिलने पाती! भौतिक सभ्यता, यहाँ तक कि विलासमयता की भी जरूरत होती है—क्योंकि उससे गरीबों को काम मिलता है। रोटी! रोटी! मुझे इस बात का विश्वास नहीं है कि वह भगवान, जो मुझे यहाँ पर रोटी नहीं दे सकता, वही स्वर्ग में मुझे अनन्त सुख देगा! राम कहो! भारत को उठाना होगा, गरीबों को भोजन देना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा और पुरोहित प्रपंच की बुराइयों का निराकरण करना होगा। पुरोहित-प्रपंच की बुराइयों और सामाजिक अत्याचारों का कहीं नाम-निशान न रहे। सबके लिए अधिक अन्न और सबको अधिकाधिक सुविधाएँ मिलती रहें। हमारे मूर्ख नौजवान अंग्रेजों से अधिक राजनीतिक अधिकार पाने के लिए सभाएँ आयोजित करते हैं। इस पर अँग्रेज केवल हँसते हैं। स्वाधीनता पाने का अधिकार उसे नहीं, जो औरों को स्वाधीनता देने को तैयार न हो। मान लो कि अंग्रेजों ने तुम्हें सब अधिकार दे दिये, पर उससे क्या फल होगा? कोई न कोई वर्ग प्रबल होकर सब लोगों से सारे अधिकार छीन लेगा और उन लोगों को दबाने की कोशिश करेगा। और गुलाम तो शक्ति चाहता है, दूसरों को गुलाम बनाने के लिए।

इसलिए हमें वह अवस्था धीरे-धीरे लानी पड़ेगी—अपने धर्म पर अधिक बल देते हुए और समाज को स्वाधीनता देते हुए। प्राचीन धर्म से पुरोहित-प्रपंच की बुराइयों को एक बार उखाड़ दो, तो तुम्हें संसार का सबसे अच्छा धर्म उपलब्ध हो जायगा। मेरी बात समझते हो न? भारत का धर्म लेकर एक यूरोपीय समाज का निर्माण कर सकते हो। मुझे विश्वास है कि यह सम्भव है और एक दिन ऐसा अवश्य होगा।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय मध्य भारत में एक उपनिवेश की स्थापना करना है, जहाँ तुम अपने विचारों का स्वतन्त्रतापूर्वक अनुसरण कर सको। फिर ये ही मुट्ठी भर लोग सारे संसार में अपने विचार फैला देंगे। इस बीच एक मुख्य केन्द्र बनाओ और भारत भर में उसकी शाखाएँ खोलते जाओ। अभी केवल धर्म-भित्ति पर ही इसमी स्थापना करो और अभी किसी उथल-पुथल मचानेवाले सामाजिक सुधार का प्रचार मत करो; साथ ही उतना ध्यान रहे कि किसी मूर्खताप्रसूत कुसंस्कारों को सहारा न देना। जैसे पूर्वकाल में शंकराचार्य, रामानुज तथा चैतन्य आदि आचार्यों ने सबको समान समझकर मुक्ति में सबका समान अधिकार घोषित किया था, वैसे ही समाज को पुनः गठित करने की कोशिश करो।

उत्साह से हृदय भर लो और सब जगह फैल जाओ। काम करो, काम करो। नेतृत्व करते समय सबके दास हो जाओ, निःस्वार्थी होओ और कभी एक मित्र को पीठ पीछे दूसरे की निन्दा करते मत सुनो। अनन्त धैर्य रखो, तभी सफलता तुम्हारे हाथ आयेगी। भारत का कोई अखबार या किसी के पते अब मुझे भेजने की आवश्यकता नहीं। मेरे पास उनके ढेर जमा हो गये; अब बस करो। अब इतना ही समझो कि जहाँ जहाँ तुम कोई सार्वजनिक सभा बुला सके, वहीं काम करने का तुम्हें थोड़ा मौका मिल गया। उसी के सहारे काम करो, काम करो, काम करो, औरों के हित के लिए काम करना ही जीवन का लक्षण है। मैंने श्री अय्यर को अलग पत्र नहीं लिखा, पर अभिनन्दन पत्र का जो उत्तर मैंने दिया, शायद वही पर्याप्त हो। उनसे और मेरे अन्यान्य मित्रों से मेरा हार्दिक प्रेम, सहानुभूति और कृतज्ञता ज्ञापन करना। वे

सभी महानुभाव हैं। हाँ, एक बात के लिए सतर्क रहना—दूसरों पर अपना रोब जमाने की कोशिश मत करना। मैं सदा तुम्हीं को पत्र भेजता हूँ, इसलिए तुम मेरे अन्य मित्रों से अपना महत्त्व प्रकट करने की फिक्र में न रहना। मैं जानता हूँ कि तुम इतने निर्बोध न होगे पर तो भी मैं तुम्हें सतर्क कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। सभी संगठनों का सत्यानाश इसी से होता है। काम करो, काम करो, दूसरों की भलाई के लिए काम करना ही जीवन है।

मैं चाहता हूँ कि हममें किसी प्रकार की कपटता, कोई मक्कारी, कोई दुष्टता न रहे। मैं सदैव प्रभु पर निर्भर रहा हूँ, सत्य पर निर्भर रहा हूँ, जो कि दिन के प्रकाश की भाँति उज्ज्वल है। मरते समय मेरी विवेक-बुद्धि पर यह धब्बा न रहे कि मैंने नाम या यश पाने के लिए, यहाँ तक कि परोपकार करने के लिए दुरंगी चालों से काम लिया था। दुराचार की गंध या बदनीयती का नाम तक न रहने पाये।

किसी प्रकार का टालमटोल या छिपे तौर से बद-माशी या गुप्त रास्ता हममें न रहे—पर्दे की आड़ में कुछ न किया जाय। गुरु का विशेष कृपापात्र होने का कोई भी दावा न करे—यहाँ तक कि हममें कोई गुरु भी न रहे। मेरे साहसी बच्चो, आगे बढ़ो—चाहे धन आये न आये, आदमी मिलें या न मिलें। क्या तुम्हारे पास प्रेम है? क्या तुम्हें ईश्वर पर भरोसा है? बस, आगे बढ़ो, तुम्हें कोई न रोक सकेगा।

भारत से प्रकाशित थियोसॉफिस्टों की पत्रिका में लिखा है कि थियोसॉफिस्टों ने ही मेरी सफलता की राह साफ कर दी थी। ऐसा! क्या बकवास है!—थियोसॉ-फिस्टों ने मेरी राह साफ की!!

सतर्क रहो! जो कुछ असत्य है, उसे पास न फटकने दो! सत्य पर डटे रहो, बस, तभी हम सफल होंगे—शायद थोड़ा अधिक समय लगे, पर सफल हम अवश्य होंगे। इस तरह काम करते जाओ कि मानो मैं कभी था ही नहीं। इस तरह काम करो कि मानो तुममें से एक के ऊपर सारा काम आ पड़ा है। भविष्य की पचास सदियाँ तुम्हारी ओर ताक रही हैं, भारत का भविष्य तुम पर ही निर्भर है। काम करते जाओ। पता नहीं, कब मैं स्वदेश लौटूँगा। यहाँ काम करने का बड़ा अच्छा क्षेत्र है। भारत में लोग अधिक से अधिक मेरी प्रशंसा भर कर सकते हैं, पर वे किसी काम के लिए एक पैसा भी न देंगे, और दें भी, तो कहाँ से? वे स्वयं भिखारी हैं न? फिर गत दो हजार या उससे भी अधिक वर्षों से वे परोप-कार करने की प्रवृत्ति ही खो बैठे हैं। 'राष्ट्र' 'जन-साधारण' आदि के विचार वे अभी अभी सीख रहे हैं। इसलिए मुझे उनकी कोई शिकायत नहीं करनी है। आगे और भी विस्तार से लिखूँगा। तुम लोगों को सदैव मेरा आशीर्वाद।

तुम्हारा,
विवेकानन्द

(रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित पत्रावली से साभार—सं०।)

विवेकानन्द : आत्माओं के उद्बोधक

स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, हैदराबाद

[रामकृष्ण संघ के न्यासी एवं वरिष्ठ संन्यासी श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने १ अक्टूबर, १९७७ को मास्को विश्वविद्यालय में स्वामी 'विवेकानन्द का मानवतावाद' विषय पर अंग्रेजी में बड़ा ही महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। वह व्याख्यान 'प्रबुद्ध भारत' के १९८० ई० के नवम्बर, दिसम्बर तथा १९८१ ई० के जनवरी अंकों में प्रकाशित हुआ, जिसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर में कार्यरत स्वामी विदेहात्मानन्दजी ने किया। यह अनुवाद अद्वैत आश्रम, कलकत्ता से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत निबन्ध उसी पुस्तक से साभार गृहीत है। —सं०]

पाश्चात्य देशों में चार वर्षों के कठोर आध्यात्मिक व सांस्कृतिक क्रियाकलापों के द्वारा उन्होंने पाश्चात्य मानवतावाद को आध्यत्मिकता की ओर मोड़कर उसे जाति व सम्प्रदाय की सीमाओं से बाहर निकाला। १८९७ ई० में वे भारतवर्ष को वापस लौटे और उनके जाग्रत स्वदेशवासियों ने उनका ऐसा भव्य, जीवन्त स्वाभाविक और उत्साहपूर्ण स्वागत किया, जैसा कि अब तक के इतिहास में किसी भी विजेता या जननायक को प्राप्त नहीं हुआ था। उस उत्तेजनापूर्ण राष्ट्रीय अभ्यर्थना के उत्तर में देश की जनता को अपना प्रभावशाली वेदान्त का संदेश देते हुए उन्होंने उनको कहा कि वे अपनी शताब्दियों की निद्रा त्यागकर मानवतावादी दर्शन के आधार पर राष्ट्र का पुनर्निर्माण करें। चाहे पूरब में हो या पश्चिम में, वे सर्वत्र ही आत्माओं के उदबुद्धकर्त्ता रहे। उनके प्रेरक भारतीय व्याख्यानों का केन्द्रीय विषय था मनुष्य—उसकी उत्पत्ति, विकास तथा उसकी परिपूर्णता। महात्मा गाँधी कहते हैं (स्वामी विवेकानन्द की 'शिक्षा' नामक पुस्तक की भूमिका में) :

निश्चय ही विवेकानन्द के लेखों के लिये किसी की भूमिका की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं ही अपना अदम्य प्रभाव छोड़ जाते हैं।

और पंडित जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं—(Discovery of India, P. 400) :

प्राचीन भारत के मूल में पगे तथा भारतीय परम्परा के प्रति गर्वान्वित, विवेकानन्द का दृष्टिकोण जीवन की समस्याओं के प्रति अत्यन्त आधुनिक था, और वे प्राचीन तथा अर्वाचीन भारत के बीच एक सेतु के समान थे।

सुदूर दक्षिण में अवस्थित कोलम्बो (श्री लंका) से लेकर सुदूर उत्तर में अवस्थित अल्मोड़ा (हिमालय) तक उन्होंने एक महान् राष्ट्रीय जागरण की सृष्टि की थी; क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य था—भारतीय जनसमाज को जगाना और आधुनिक युग की सुविधाओं का उपयोग कर, वर्त्तमान काल की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम एक वास्तविक मानवतावादी समाज व्यवस्था का गठन करना। यह भाव स्वाधीनता के पचास वर्ष पूर्व ही १८९७ ई० में, भारतीय भूमि पर प्राचीन पवित्र तीर्थ रामेश्वरम् के निकट अवस्थित रामनाद में प्रदत्त उनके प्रथम व्याख्यान के प्रारम्भिक वाक्यों से ही प्रतिध्वनित होता है (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-५, प्र० सं०, पृष्ठ ४२-४३) :

सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्रायः अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा

में निमग्न शव मानो जाग्रत हो रहा है। इतिहास की बात तो दूर रही, जिस सुदूर अतीत के घनान्धकार को भेद करने में अनुश्रुतियाँ भी असमर्थ हैं, वहीं से एक आवाज हमारे पास आ रही है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के अनन्त हिमालय स्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की हर एक चोटी पर प्रतिध्वनित होकर यह आवाज मृदु, दृढ़ परन्तु अभ्रान्त स्वर में हमारे पास तक आ रही है। जितना समय बीतता है, उतनी ही वह और भी स्पष्ट तथा गम्भीर होती जाती है—और देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानो हिमालय के प्राणप्रद वायु-स्पर्श से मृतदेह के शिथिलप्राय आस्थि-मांस तक में प्राण-संचार हो रहा है। जड़ता धीरे-धीरे दूर हो रही है। जो अन्धे हैं, वे ही देख नहीं सकते और जो विकृत बुद्धि हैं वे ही समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब य: फिर सो नहीं सकती। क्योंकि यह आसाधारण शक्ति का देश अब जागकर खड़ा हो रहा है।

रोमाँ रोलाँ कहते हैं, 'इन शब्दों का कैसा घन-गम्भीर घोष गूँज-गूँजकर उमड़ा होगा!' और आगे वे और भी कहते हैं ('विवेकानन्द' अनु० 'अज्ञेय', प्र० सं०, पृष्ठ११६)

उसी दिन से तन्द्रालस विशाल भारत का जागरण आरम्भ हुआ। विवेकानन्द के निधन के तीन वर्ष पश्चात् तिलक और गाँधी के महान् आन्दोलन से श्रीगणेश के रूप में जो वंग-विद्रोह आगत पीढ़ी के सामने हुआ और भारत में आजतक जो संगठित जन आन्दोलन हुए वे सब 'मद्रास के सन्देश' में निहित 'लाजारस आगे बढ़ो' की गुरु गम्भीर पुकार के कारण हुए जिसने बहुतों को जगाया है।

इस जागरण ने दस वर्षों के भीतर ही राजनीतिक जागरण को जन्म दिया और स्वाधीनता के लिए जन संघर्ष की प्रेरणा दी। यह संघर्ष १९०५ ई० में बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन के रूप में शुरू हुआ, तदुपरान्त यह हिंसापूर्ण विप्लववादी क्रान्तिकारी आन्दोलन से होता हुआ, अन्त में महात्मा गाँधी के अहिंसक जन सत्याग्रह तथा १९२० ई० से १९४७ ई० तक 'भारत छोड़ो' के रूप में चरम सीमा तक पहुँचा। भारतीय राष्ट्र पर विवेकानन्द के प्रभाव का निरूपण करते हुए रोमाँ रोलाँ लिखते हैं (३१४—१६):

अपने आत्मा की भट्ठी में तपा ठोक पीटकर मन-मोहक शब्दों व अग्निमय वाक्यों को गढ़ने की उनमें अद्भुत प्रतिभा थी, जिससे हजारों के हृदय बिंध जाया करते थे। उनकी एक सूक्ति थी—दरिद्र-नारायण, जिसने कि सर्वाधिक प्रभाव विस्तार किया था।.....

अनेक शताब्दियों से भारतवर्ष जो ऊसर विचारधारा की चलमान बालुकाराशि में पड़ा हुआ था, उससे उसका उद्धार उसी के एक संन्यासी के हाथों हुआ; और इसके फलस्वरूप उसके नीचे छिपी हुई अतीन्द्रियवाद की जलराशि बड़ी-बड़ी लहरों के रूप में प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार जो प्रचण्ड शक्तियाँ उन्मुक्त हुई थीं, उनसे पश्चिम को अवगत होना आवश्यक है।.....

विगत शताब्दी में तीन पीढ़ियों के तूर्यवादकों ने इस पुनर्जागरण में चाहे जो भी भूमिका क्यों न निभाई हो (जिनमें सर्वोच्च व सच्चे अग्रदूत राममोहन राय हैं, जो हमारे प्रणम्य हैं), परन्तु चरम तूर्यनाद तो (विवेकानन्द के) कोलम्बो व मद्रास में प्रदत्त व्याख्यानों द्वारा ही हुआ था।

विवेकानन्द के मानवतावाद की तीव्रता उनके निम्नलिखित पत्र में परिलक्षित होती है, जो कि उन्होंने ९ जुलाई १९८७ ई० को शिकागो की कु० मेरी हेल को लिखा था (विवेकानन्द सा०, खण्ड ६, पृष्ठ ३४४):

मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा अब बिल्कुल नहीं। सांसारिक भोग तो मैंने कभी चाहा ही नहीं। मुझे सिर्फ अपने यन्त्र को मजबूत और कार्योपयोगी देखना है,

और फिर निश्चित रूप से यह जानकर कि कम से कम भारत में मैंने मानवजाति के कल्याण का एक ऐसा यन्त्र स्थापित कर दिया है, जिसका कोई शक्ति नाश नहीं कर सकती, मैं सो जाऊँगा और आगे क्या होनेवाला है, इसकी परवाह नहीं करूँगा। मेरी अभिलाषा है कि मैं बार-बार जन्म लूँ और हजारों दुःख भोगता रहूँ, ताकि मैं उस एकमात्र सम्पूर्ण आत्माओं के समष्टिरूप ईश्वर की पूजा कर सकूँ जिसकी सचमुच सत्ता है और जिसका मुझे विश्वास है। सबसे बढ़कर, सभी जातियों और वर्णों के पापी, तापी और दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य है।

स्वामी विवेकानन्द और जनसाधारण

—स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ

[चार वर्ष पूर्व विवेकानन्द युव महामण्डल के अखिल भारतीय शिविर में स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज द्वारा दिये गये व्याख्यान के टेप को बेलुड़ मठ में कार्यरत स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज ने उसके महत्व को देखकर विवेक शिखा के लिए लिपिबद्ध और सम्पादित किया है। यह व्याख्यान सब के लिए प्रेरणास्पद है।—सं०]

मित्रो, आज की इस पावन संध्या में हम सब यहाँ विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी के उपदेशों पर विचार कर उनसे प्रेरणा लेने के लिए इकट्ठे हुए हैं। मुझे जब यह बताया गया कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी यहाँ (बेलुड़मठ के अन्दर) अखिल भारतीय विवेकानन्द युव महामण्डल वार्षिक सम्मेलन होगा, तब मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके साथ ही मुझसे कहा गया कि "स्वामी विवेकानन्दजी तथा भारत के जन साधारण" विषय पर मैं कुछ बोलूँ।

स्वामी विवेकानन्दजी ने स्वप्न देखा था कि भारत का भविष्य यहाँ के तरुणों के हाथों गढ़ा जायेगा। आज स्वामीजी की आत्मा यह देख कर अत्यन्त आनंन्दित हो रही होगी कि सहस्रों युवक उनके भाव से प्रेरित हो कर अपना चरित्र गठन करने को कटिबद्ध हैं। स्वामी जी के उपदेशों तथा दर्शन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके उपदेशों की बहुमुखता को समझा जाय। स्वामीजी ने हमें मानव जीवन का एक सर्वांगपूर्ण जीवन-दर्शन दिया है। मानव-जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जो उनके उपदेशों से अछूता रह गया हो।

स्वामीजी ने जीवन के शाश्वत तत्वों की अनुभूति की थी इसलिए उनके द्वारा दिये गये जीवन की समस्याओं के समाधान भी शाश्वत एवं विश्वजनीन हैं।

केवल भारत ही नहीं, समस्त विश्व की समास्याओं का समाधान हमें स्वामी जी की शिक्षाओं में मिलता है। इतना ही नहीं, स्वामीजी द्वारा दिये गये समाधानों के अतिरिक्त विश्व की समस्याओं का और कोई विकल्प या समाधान नहीं है। इस युग की यह मांग है कि उनके जीवनदर्शन को पढ़ा जाय, उस पर विचार विमर्श किया जाय और व्यावहारिक जीवन में उसे उतारा जाय। इसका सबसे बड़ा दायित्व आप और हम पर है, जो लोग स्वामी विवेकानन्दजी के आदर्शों को लेकर चलने की चेष्टा कर रहे हैं। आने वाले युग में सारा विश्व इस बात

पर हमारी निन्दा या प्रशंसा करेगा कि हमने स्वामीजी के विचारों, उपदेशों को अपने जीवन में कितना उतारा है या उसकी कितनी उपेक्षा की है। यदि हमने प्रमाद पूर्वक उनके विचारों और उपदेशों की उपेक्षा की तो सारा विश्व हमें अभिशाप देगा और यदि हमने नम्रता पूर्वक अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनपर आचरण करने की चेष्टा की तो सारा विश्व हमें आशीर्वाद देगा तथा हमारे स्वयं का जीवन भी धन्य हो जायेगा।

अपने भारत के जन साधारण पर विचार करने के पूर्व हमें यह देखना होगा कि स्वामी जी की दृष्टि में भारत क्या था? यह बात कदाचित कुछ लोगों को समीचीन न लगे कि भला स्वामी जी की दृष्टि में भारत क्या था इस बात पर क्यों विचार किया जाय? भारत भारत है।

स्वामी विवेकानन्दजी ने कन्या कुमारी की अन्तिम शिला पर बैठ ध्यानस्थ हो जिस भारत माता का साक्षात्कार किया था वह भारत, तथा उस समय के हमारे भारतीय भाइयों के मन में भारत का जो चित्र था, तथा कुछ अंशों में अभी भी हमारे मन में जिस भारत का चित्र है उसमें बहुत बड़ा अंतर है। स्वामी जी के 'भारत' को यदि एक शब्द में व्यक्त करना हो तो वह "जागृता देवी" थीं! माता थीं! उन्होंने भारत माता के दर्शन किये थे। स्वामी जी ने राजपुताना के अपने एक मित्र को एक पत्र में लिखा था "मेरी इच्छा है कि मैं अपना समस्त जीवन अपने धर्म तथा अपनी मातृभूमि की सेवा में समर्पित कर दूँ।"

१८९७ ई० में पश्चात्य देशों में भारतीय संस्कृति और धर्म की विजय वैजन्ती फहरा कर जब स्वामीजी भारत लौटे तब कोलम्बो के हिन्दू नागरिकों ने उनका भव्य स्वागत किया था। उस स्वागत के उत्तर में दिया गया उनका वह व्याख्यान बहुत प्रसिद्ध है। उस व्याख्यान का आरंभ ही स्वामी जी ने भारत के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करते हुए किया था। इस व्याख्यान को यदि आप पढ़ें तो पायेंगे कि आरंभ में ही स्वामी जी कहते हैं "पहले मैं भी अन्य हिन्दुओं की तरह विश्वास करता था कि भारत पुण्य भूमि है—कर्म भूमि है'..... पर आज मैं इस सभा के सामने खड़ा हो कर दृढ़ता के साथ बार बार कहता हूँ कि यह सत्य है! सत्य है! यदि पृथ्वी में ऐसा कोई देश है जिसे हम पुण्य भूमि कह सकते हैं—यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ पृथ्वी के सब जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना पड़ता है—यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ भगवान को प्राप्त करने की आकांक्षा रखने वाले जीवमात्र को आना होगा, यदि ऐसा कोई देश है जहाँ मानव जाति के भीतर क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वापेक्षा अधिक विकास हुआ है—यदि ऐसा कोई देश है जहाँ सर्वापेक्षा अधिक आध्यात्मिकता तथा अन्तर्दृष्टि का विकास हुआ है तो मैं निश्चित रूप से यही कहूँगा कि वह हमारी मातृभूमि भारतवर्ष है।" (भारत में विवेकानन्द पृ० २, ३, षष्ठ संस्करण)

यह भारत क्या है यह हमें समझना होगा। स्वामीजी का भारत, तथा जिस भारत की कल्पना आज हमारे मन में है, उसमें अन्तर कहाँ है, यह समझना होगा। इसे समझने के लिए हमारे इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है। स्वामीजी ने जिस भारत के दर्शन किये थे वह उनका समकालीन भूखा, नंगा, दरिद्र भारत नहीं था। जिस भारत के प्रति उन्होंने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी वह परमुखापेक्षी गुलाम भारत नहीं था। स्वामीजी ने जिस भारत के दर्शन किये थे वह अतीत का गौरवशाली तथा भविष्य में महान महिमा मण्डित होने वाला सर्वांगीण उन्नत भारत था।

स्वामी जी ने भारत के इतिहास का गहन अध्ययन किया था। अपने एक व्याख्यान "हमारा प्रस्तुत कार्य" में स्वामीजी ने हमारे देश के पतन का कारण बताया है। उस कारण की मीमांसा करते हुए उन्होंने एक अभिनव ऐतिहासिक दृष्टि देकर हमारे एक बड़े भ्रम को दूर किया। हम लोगों को इतिहास में पढ़ाया गया है कि मुसलमानों के आक्रमण के बाद हमारे देश का पतन

हुआ और हम गुलाम हो गये। स्वामीजी ने हमें बताया कि मुसलमानों के आक्रमण के दो तीन शताब्दी पूर्व ही हमारी जाति ने अपना सत्व एवं शक्ति खो दी थी। इतिहास में रुचि रखने वाले लोग जानते हैं कि इस्लाम के प्रारंभिक धर्म प्रचार आक्रमण के समय लगभग सन् ७१२ या ७१५ ई० में भारत के सिंध प्रांत, जो अब पाकिस्तान में है, पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। किन्तु इस देश में पहली बार उनका राज्य स्थापित हुआ ११९१ ई० में जब मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज को हरा कर दिल्ली की गद्दी पर बैठा।[1]

आश्चर्य की बात है, इस बीच लगभग चार पाँच सौ वर्षों का अन्तराल रहा। कहाँ आठवीं शताब्दी का प्रारंभ और कहाँ बारहवीं शताब्दी का प्रारंभ। किन्तु इन विदेशियों के आक्रमण को रोकने के लिए कोई चेष्टा नहीं हुई। हम कितने असंगठित और दुर्बल हो गये थे, इतिहास के कुछ उदाहरण ही यह हमें स्पष्ट बता देते हैं।

११९१ में मुहम्मद गोरी दिल्ली की गद्दी पर बैठा। तीन वर्ष पश्चात् सन् ११९४ में उसने काशी पर विजय प्राप्त कर ली। लगभग उसी समय बंगदेश भी मुसलमानों के अधिकार में आ गया।

क्या कारण है कि जहाँ एक ओर हजारों शकों और हूणों के आक्रमण हमारे देश पर वर्षों होते रहे किन्तु उनको हमारी जाति ने आत्मसात कर लिया: वे हमारे रक्त में मिल कर एक हो गये; उन्होंने हमारा धर्म स्वीकार लिया तथा हमारी संस्कृति से एकाकार हो गये, उसी देश को पेशावर से मुर्शिदाबाद तक मुट्ठी भर मुसलमानों ने ८, १० वर्षों में जीत लिया? क्या कारण था? स्वामी विवेकानन्दजी ने 'भारत का भविष्य' तथा 'मेरी समरनीति' नामक अपने व्याख्यानों में इस कारण की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। उनके 'हमारा प्रस्तुत कार्य' विषयक व्याख्यान में भी हम इसकी चर्चा पाते हैं।

इतिहासकारों का कहना है कि भारत का पतन तो सम्राट हर्षवर्धन के बाद से ही प्रारंभ हो गया था। हर्षवर्धन के बाद इस देश में कोई चक्रवर्ती सम्राट नहीं हुआ तथा इसी कारण हमारी एकता दुर्बल और खंडित हो गयी। उस समय भी हमारे देशवासी सुशिक्षित थे, वीरता भी उनमें कम नहीं थी। किन्तु अति संपन्नता के कारण उनमें विलासिता आ गयी और उसी का यह परिणाम हुआ कि सिंध पर विधर्मियों के आक्रमण के पश्चात चार पाँच सौ वर्षों का समय मिलने पर भी हम लोग विपत्ति का सामना करने के लिए स्वयं को प्रस्तुत न कर पाये। इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर यह सत्य हमारे सामने और भी प्रत्यक्ष हो उठता है। व्यक्तिगत मान प्रतिष्ठा तथा राज्यलोभ के कारण हम परस्पर ही लड़ रहे थे। सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करने के पूर्व गजनी के अमीर ने गुप्तचर भेज कर वहाँ का सब हालचाल जानना चाहा था। उसे खबर लगी कि सोमनाथ के पास झालोर नामक एक राज्य है जिसके राजा वाक्यपति बड़े शूरवीर और शक्तिशाली हैं। उनके पास एक बड़ी सेना भी है। झालोर के राजा से मैत्री किये बिना सोमनाथ पर विजय असंभव है। गजनवी ने मुल्तान के राजा जयपाल को अपना दूत बनाकर झालोर भेजा तथा राजा वाक्पति से कहलाया कि हम आपके राज्य पर आक्रमण नहीं करना चाहते और न ही आपको किसी प्रकार की हानि ही पहुँचाना चाहते हैं। आप हमारे सोमनाथ पर आक्रमण के समय कोई बाधा न दें तथा तटस्थ रहें। राजपूती शान में राजा वाक्पति ने गजनवी को वचन दे दिया। जब सोमनाथ पर आक्रमण हुआ तब राजा भीमदेव के नेतृत्व में राजपूतों ने मंदिर की रक्षा करने का निर्णय किया। राजा भीमदेव ने झालोर के राजा के पास अपने मंत्री को भेज कर इस विपत्ति के समय मंदिर को बचाने में सहायता करने की प्रार्थना की। झालोर के राजा वाक्पति ने उत्तर दिया "गत वर्ष जब मैं मारवाड़ पर आक्रमण करना चाहता था और आप से मदद माँगी थी उस समय आपने कहा था कि मारवाड़ में आपके संबंधी हैं इसलिए आप मेरी सहायता नहीं कर

१. दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ २६२।

सकते। अब जब तुम पर विपत्ति आयी है, मैं भी तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा। तुम्हारी विपत्ति तुम्हीं झेलो। और इस फूट का परिणाम क्या हुआ यह हम सभी जानते हैं।

यह क्यों हुआ ? हमारी दुर्बलता, हमारे धर्म में आयी विकृति ही इसका कारण थी। धर्म रूढ़ियों तथा अंध विश्वासों में सिमट कर निर्जीव-सा हो उठा था। धर्म के नाम पर समाज ऊँची नीची श्रेणियों में विभक्त हो गया। सारा देश शासक और शासित दो भागों में बँट गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य जिनकी संख्या समाज में अपेक्षाकृत कम थी, शासक बन बैठे तथा बहुसंख्यक दीन-हीन, दुर्बल, उपेक्षित, परिश्रमरत लोग शासित होने के लिए बाध्य किये गये। यही बहुसंख्यक उपेक्षित दीन हीन लोगों का समाज ही भारत का जन साधारण समाज था और आज भी है।

परिव्राजक जीवन में जहाँ स्वामीजी राजा महाराजाओं के साथ रहे, वहीं वे दीन दुःखी मोची मेहतरों के साथ भी रहे थे। अपने अनुभव से स्वामी जी ने यह जान लिया था कि राजा महाराजाओं तथा धनिक वर्ग के लोगों से इस देश का कल्याण नहीं हो सकता। इस देश का कल्याण होगा इन बहुसंख्यक दीन दुःखियों के उत्थान से, उनके विकास से, उनके जागरण से। इसीलिए उन्होंने दो बातें कहीं "जनसाधारण के पास जाओ" अर्थात् उन्हें जगाओ उनकी उन्नति की व्यवस्था करो तथा "स्त्रियों को शिक्षा दो।" इसके बिना इस देश का कल्याण नहीं हो सकता।

जन साधारण को जगाने का उपाय क्या है ? स्वामी जी ने हमें बताया कि शिक्षा ही एक मात्र वह उपाय है जिसके द्वारा जन साधारण को जगाया जा सकता है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि स्वामी जी ने अँगरेजों द्वारा चलायी गयी किरानी बनाने कि शिक्षा की बात नहीं कही थी। उनका कथन था कि जो शिक्षा मनुष्य को मनुष्यत्व दे उसके भीतर की पूर्णता को प्रकट करे उसे आत्म विश्वासी तथा स्वावलंबी बनाए वही शिक्षा सच्ची शिक्षा है। केवल अर्थकरी शिक्षा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकती अतः अर्थकरी शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा भी देनी पड़ेगी। धर्म ही हमारे समाज का मेरुदण्ड है। इसलिए हमारी शिक्षा का आधार धार्मिक और आध्यात्मिक होना चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि यह शिक्षा कौन दे ? इसका दायित्व स्वामी जी ने देश के शिक्षित लोगों को दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि देश का शिक्षित वर्ग इन्हीं दीन दुखियों के परिश्रम से उपलब्ध सुविधाओं के कारणही शिक्षित हो सका है। अतः अब यह शिक्षित वर्ग के लोगों का कर्त्तव्य है कि वह अपने दीन हीन अशिक्षित भाइयों की शिक्षा का दायित्व ले, उसका समुचित प्रबंध करे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह देशद्रोही है।

दूसरी एक महत्त्वपूर्ण बात स्वामी जी ने और कही है। हमारे ये दीन दुःखी देशवासी भाई अपना व्यक्तित्व खो चुके हैं। वे आत्मविश्वास खो चुके हैं। दीनता तथा हीनदासत्व की भावना उनके मन मे घर किए बैठी है। इसे दूर करना होगा। उन्हें बताना होगा कि भाई, तुम भी मनुष्य हो, तुम्हारे भीतर भी अनन्त शक्ति है। तुम्हारी उन्नति की संभावनाएँ भी महान हैं। उठो ! जागो ! अपने आप पर विश्वास करो तथा उन्नत मस्तक हो कर सभ्य और शिक्षित लोगों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलो। महानता और सफलता किसी वर्ग विशेष की संपत्ति नहीं है। विश्वास रखो, लगन और परिश्रम के द्वारा तुम भी महानता और सफलता प्राप्त कर सकते हो।

स्वामीजी ने हमें यह चेतावनी दी है कि यदि हमने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया तथा दुःखी दरिद्र जनसाधारण की उपेक्षा की तो वह दिन दूर नहीं कि ये लोग जागेंगे तथा एक महान दानव की भाँति तुम्हें

नष्ट करने के लिए, निगल जाने के लिए टूट पड़ेंगे। और यदि दुर्भाग्य से ऐसा हुआ तो विनाश के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाएगा। क्योंकि तोड़-फोड़ तथा ऊपर के वर्ग को घसीट कर नीचे उतार देने के द्वारा कभी भी समाज की उन्नति और देश का कल्याण नहीं हो सकता। भारत और उसके साथ विश्व के कल्याण का एक मात्र उपाय है निम्न वर्ग के लोगों को ऊपर उठाना। उनकी उन्नति करना। स्वामीजी ने अपने 'भारत का भविष्य' व्याख्यान में कहा कि हमारे समाज का, देश का आदर्श है 'ब्राह्मणत्व'। भारत की कल्याण-योजना की एक कड़ी है ब्राह्मण और दूसरी है चाण्डाल। ब्राह्मण चोटी की कड़ी है और चाण्डाल सबसे नीचे की। देश की सर्वांगीण उन्नति का उपाय यह है कि इस चाण्डाल को ब्राह्मणत्व के पद पर उन्नत करना होगा। उसे ऊँचा उठाना होगा।

ब्राह्मण कौन है? क्या कोई जन्म से ब्राह्मण होता है? क्योंकि मेरे पिता-माता ब्राह्मण थे इसलिए मैं भी ब्राह्मण हो गया। नहीं। ब्राह्मण जन्म से नहीं, कर्म से होता है। ब्राह्मण का आदर्श है कि वह अपरिग्रही होगा। वह धन का संचय नहीं करेगा। वह तपस्वी होगा। उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य होगा, आध्यात्मिक ज्ञान और विद्या संचय करना तथा उसका निःशुल्क वितरण करना। अपने आचरण तथा जीवन से यह दिखा देना कि मानव जीवन का उद्देश्य है ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना, ईश्वर का दर्शन करना।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य भोग कभी नहीं हो सकता। यह धारणा कि इन्द्रिय सुखों की भोग्य वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करा देने पर जीवन की समस्या का समाधान हो जायेगा, पूर्णतः भ्रान्त है। वर्तमान विश्व के संपन्न देश इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं। गत लगभग १०० वर्षों में अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस तथा निकट भूत में जापान ने यह चेष्टा की है कि उन देशों के नागरिकों को सभी प्रकार की भौतिक सुविधाएँ और सुख उपलब्ध कराये जायँ। इस प्रयास में वे देश पर्याप्त मात्रा में सफल भी हुए हैं। किन्तु उसका परिणाम जो हमारे सामने है वह तो प्रज्वलित अग्नि में घी डालने के समान ही है। जीवन की समस्या के समाधान के स्थान पर आज इन देशों ने विश्व को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। संसार को यदि विनाश से बचाना है तो उसका एक मात्र उपाय है भारतीय जीवनादर्श की पुनर्प्रतिष्ठा।

भारत के इन उपेक्षित दीन हीन दरिद्रों के प्रति हम तथाकथित शिक्षित तथा सम्पन्न लोग यदि सहानुभूति न दिखा सके, उनके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन न कर सके तो वह दिन दूर नहीं जब भारत का यह विशाल किंतु उपेक्षित निम्न वर्ग भोगवादी आदर्श के प्रति आकृष्ट हो उन्मत्त हो उठेगा तथा शिक्षित और सम्पन्न तथाकथित उच्च वर्ग को छिन्न-भिन्न कर उनका विनाश कर देगा।

अतः धनिकों का यह कर्त्तव्य है कि जिस समाज से उन्हें धन मिला है उसे उसी की सेवा में अर्पित करें। जन साधारण की दरिद्रता को दूर करने का सक्रिय प्रयास करें, दरिद्र नारायण की पूजा और उपासना अपने धन से करें। जो लोग शिक्षित हैं, विद्वान हैं, वे अपनी शिक्षा तथा विद्या के द्वारा अशिक्षित भाइयों की सेवा करें। उन्हें शिक्षा दें। उन्हें विद्यादान करें। 'मूर्खनारायण' की अपनी अर्जित विद्या द्वारा पूजा और उपासना करें।

यह उपासना, यह सेवा कहाँ से प्रारंभ करें? हम जहाँ रह रहे हैं, अभी हमारी सेवा का वही उपयुक्त क्षेत्र है। उसी स्थान से नारायण सेवा का यह यज्ञ प्रारंभ करना होगा। हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमारा जन्म जगत्-उद्धार के लिए नहीं हुआ है। हमें तो ओस की बूँद की भाँति अज्ञात, अजाना, अचीन्हा रह कर अपना कर्त्तव्य करते जाना होगा। उद्धार का कार्य तो केवल ईश्वर ही करते हैं। इस सेवा के द्वारा हम ईश्वर की कृपा के पात्र हो सकेंगे तथा उसी से हमारा उद्धार होगा। यही लाभ है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के चालीस वर्षों पश्चात् भी आज जन साधारण में छुआ-छूत, ऊँच-नीच जातियों का भेद,

अस्पृश्य कहे जाने वाले हमारे भाइयों के प्रति अत्याचार आदि का रोग जड़ें जमाये हुए है। हमारी यह धारणा हो गयी है कि राजनीति के द्वारा इस समस्या का समाधान हो जायेगा। हमें यह विशेष रूप से स्मरण रखना होगा कि लोक सभा या विधान सभाओं में कानून बना कर जन मानस को नहीं बदला जा सकता। स्वामी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि केवल राजनीति के द्वारा हमारी समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव यही है कि राजनैतिक दासता चालीस वर्षों पूर्व चली गयी किंतु हमारी समस्याएँ जटिलतर होती जा रही हैं। छुआ-छूत तथा अस्पृश्यता की समस्या का समाधान स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा दिये गये जीवन-दर्शन से ही संभव है, और वह है यह कि प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है, अतः प्रत्येक मनुष्य के भीतर, हृदय में, ईश्वर विराजमान हैं। इस दृष्टि से सभी मनुष्य समान हैं। कोई नीच नहीं है, कोई अछूत नहीं है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर सभी की उन्नति में सहायक होने की चेष्टा करनी होगी। पहले स्वयं अपने मन से छुआ-छूत, ऊँच-नीच की भावना को निकाल फेंकना होगा। तथा अस्पृश्य कहे जाने वाले भाइयों के प्रति सहृदयता का व्यवहार करते हुए जनसाधारण में इस तथ्य का प्रचार करना होगा। इसी उपाय से छुआ-छूत की समस्या का समाधान होगा।

जन साधारण की उन्नति का एक महान सूत्र स्वामी जी ने दिया है, वह है स्त्री शिक्षा तथा स्त्रियों की उन्नति की योजना। स्त्रियों की दुर्दशा किसी भी समाज के पतन का एक बहुत बड़ा कारण, है अतः हमें स्त्रियों की उन्नति और शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। उसमें सहायक होना होगा। किंतु यह स्मरण रखना होगा कि स्त्रियों को उचित शिक्षा स्त्रियाँ ही दे सकती हैं। उनकी उन्नति की सही योजना वे ही बना सकतीं हैं। हम पुरुषों को उनके कार्य में सहायक मात्र ही होना है। उनके कार्यों का भार उन लोगों पर ही रहेगा। श्री माँ सारदा देवी इस युग में नारी जीवन के सर्वांगीण पूर्ण आदर्श के रूप में अवतरित हुई थी। उनके जीवन और उपदेशों के अनुसार महिलाओं को अपना जीवन गठन करने की प्रेरणा देनी होगी।

अंतिम बात यहाँ उपस्थित युवक भाइयों से कहूँ। आप हम सब जिन्होंने स्वामी विवेकानन्द को अपना जीवनादर्श चुना है उन्हें यह स्वीकार करना होगा कि राजनीति हमारे समाज की मौलिक समस्याओं को हल नहीं कर सकती। हमारी समस्याओं के समाधान का, हमारी उन्नति का उपाय है समाज के निम्नतर लोगों को ऊँचा उठाना। उन्हें शिक्षा देना। उन्हें व्यक्तित्ववान बनाना। तथा इस कार्य का दायित्व आपको, हमें अपने कंधों पर लेना होगा। संभव है आज हमारी संख्या कम हो, किंतु यह विश्वास रखें कि जो व्यक्ति पवित्र तथा निःस्वार्थ हो कर दूसरों की सेवा के लिए अग्रसर होते हैं, ईश्वर सदैव उनके साथ रहते हैं तथा अल्प संख्यक हो कर भी ईश्वरीय शक्ति के बल पर वे लोग महान कार्य करने में समर्थ होते हैं। ईश्वर हम सब को शक्ति दें, सद्बुद्धि दें इसी प्रार्थना के साथ मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। धन्यवाद।

शान्ति

— स्वामी विवेकानन्द

(न्यूयार्क के रिजले मॅनर में अंग्रेजी में लिखित, १८९९ ई०)

देखो जो बालत् आती है,
वह शक्ति, शक्ति नहीं है !
वह प्रकाश,प्रकाश नहीं है,
जो अंधेरे के भीतर है,
और न वह छाया ,छाया ही है,
जो चकाचौंध करने वाले प्रकाश के साथ है ।

वह आनन्द है, जो कभी व्यक्त नहीं हुआ,
वह अनभोगा, गहन दुःख है
अमर जीवन, जो जिया नहीं गया
और अनन्त मृत्यु, जिस पर—किसी को शोक नहीं हुआ ।

न दुःख है, न सुख,
सत्य वह है
जो इन्हें मिलाता है ।
वह रात है, न प्रात,
सत्य वह है जो इन्हें जोड़ता है ।

वह संगीत में मधुर विराम,
पावन छंद के मध्य यति है,
मुखरता के मध्य मौन,
वासनाओं के विस्फोट के बीच
वह हृदय की शान्ति है ।

सुन्दरता वह है, जो देखी न जा सके ;
प्रेम वह है, जो अकेले रहे ।
गीत वह है, जो जिये, बिना गाये,
ज्ञान वह है, जो कभी जाना न जाय ।

जो दो प्राणों के बीच मृत्यु
और दो तूफानों के बीच एक स्तब्धता है,
वह शून्य, जहाँ से सृष्टि आती है,
और जहाँ वह लौट जाती है ।
वहीं अश्रु बिन्दु का अवसान होता है,
प्रसन्न रूप को प्रस्फुटित करने को
वही जीवन का चरम लक्ष्य है,
और शांति ही एकमात्र शरण है ।

स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग का वैशिष्ट्य

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

स्वामी विवेकानन्द जैसे दुर्लभ देवमानव युग-युगान्तर में एकाध बार अवतीर्ण होते हैं। ये महापुरुष मानवजाति के ऐसे विषम सन्धि-क्षण में आविर्भूत होते हैं जब अधर्म एवं जड़वाद विश्व के अस्तित्व को ही खतरे में डाल देते हैं। तब वे समग्र मानव-जाति को एक नयी दिशा प्रदान कर उसका उद्धार साधित करते हैं।

सामान्य मानवी मापदण्डों से ऐसे महापुरुषों के महान् कार्यों का मूल्यांकन करना सम्भव नहीं होता। स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं एक बार कहा था कि जो कार्य मैंने किया है, उसे दूसरा विवेकानन्द ही समझ सकता है। स्वामी तुरीयानन्दजी के अनुसार स्वामी विवेकानन्द ने समग्र विश्व की चिन्तनधारा को ही परिवर्तित कर दिया था। अतः यदि हम अपने पूर्वाभ्यस्त चिन्तन—सदियों से विशेष प्रकार से सोचने में अभ्यस्त मन—की सहायता से स्वामीजी के अवदान का अंकन करने का प्रयत्न करें तो हम असफल ही होंगे। यह समस्या स्वयं स्वामीजी के गुरुभाइयों के साथ भी थी। विदेशों से लौटने के बाद जब स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना कर सेवा-कार्यों का प्रारम्भ किया, तो उनके गुरुभाइयों में से कुछ ने यह कहकर आपत्ति की थी कि ये कार्य श्रीरामकृष्ण के उपदेशों के अनुरूप नहीं हैं। आज उस घटना के ८६ वर्ष बाद स्वामीजी द्वारा प्रचारित एवं प्रतिष्ठित सेवाधर्म धार्मिक संघों, सामाजिक संघटनों एवं जनसमाज द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकृत एवं अनुमोदित हो चुका है। नव वेदान्त, व्यावहारिक वेदान्त, सेवाधर्म आदि नामों से जाने जानेवाले स्वामी विवेकानन्द के इस अवदान की मौलिकता, गहरे तात्पर्य एवं महत्व को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम गीतोक्त कर्मयोग को जानना आवश्यक है।

गीतोक्त कर्मयोग—

"योगः कर्मसु कौशलम्"—कर्म करने की वह कला जिससे कर्म बन्धन का कारण न होकर मुक्ति का कारण हो, कर्मयोग कहलाता है। श्रीमद्भगवद्गीता इसका सर्वमान्य एवं सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है। गीता के अनुसार निष्काम भाव से कर्म एवं कर्मफल भगवान् को समर्पित करते हुए कर्म करने से कर्ता कर्मों के अवश्य-म्भावी परिणामों से प्रभावित नहीं होता। अगर कर्तापन का भाव न रहे तो व्यक्ति सामूहिक नरसंहार-जैसा महान् पातक करने पर भी उसके दुष्परिणामों से मुक्त रह सकता है। गीतोक्त कर्मयोग के अनुसार कर्म से अधिक महत्वपूर्ण वह भाव है जिससे वह किया जाता है। अतः गीता में सर्वत्र कर्मयोगी को अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करने, इन्द्रियों को संयत करने एवं मन को समत्व में स्थापित कर कर्म करने का निर्देश दिया गया है। गीता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक स्वधर्म होता है एवं सभी स्वधर्म श्रेष्ठ होते हैं। ब्राह्मण का स्वधर्म क्षत्रिय के स्वधर्म से भिन्न होगा, लेकिन दोनों ही ठीक हैं। स्वधर्म दोषपूर्ण होने पर भी त्याज्य नहीं है।

क्या कर्म से मुक्ति सम्भव है? क्या कर्मयोग मुक्ति का एक स्वतन्त्र मार्ग है, जिसे ज्ञान, भक्ति आदि अन्य उपायों की अपेक्षा नहीं है? इस प्रश्न पर मतभेद है। आचार्य शंकर के अनुसार कर्म कभी भी मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता। सकाम कर्म तो बन्धन का कारण है ही, कर्मयोग कहलानेवाला निष्काम कर्म भी चित्तशुद्धि मात्र करता है। मुक्ति तो केवल ज्ञान से ही सम्भव है।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित् कोटिकर्मभिः ॥

—कर्म से चित्त शुद्ध होता है, चित्तशुद्धि से वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्य से ज्ञान की पात्रता जनमती है ।

स्वपरक एवं परपरक दृष्टिकोण—

गीतोक्त कर्मयोग एवं तत्सम्बन्धी उपयुक्त प्रचलित मान्यताओं से स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग के पार्थक्य एवं वैशिष्ट्य को समझने के लिए कुछ मौलिक एवं सैद्धान्तिक तथ्यों को सर्वप्रथम हृदयंगम करना आवश्यक है ।

हमारा छोटा-बड़ा प्रत्येक कर्म कुछ न कुछ फल अथवा परिणाम प्रसूत करता है । परिणामों में कुछ तो कर्ता से सम्बन्धित होते हैं जो उसे प्रभावित करते हैं, तथा कुछ उसके आसपास के वातावरण, प्राणिजगत् एवं समाज को प्रभावित करते हैं । इन्हें हम क्रमशः स्वपरक एवं परपरक (subjective and objective) परिणामों की संज्ञा दे सकते हैं । स्वपरक परिणाम कर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है, जबकि परपरक परिणाम कर्ता के दृष्टिकोण से निरपेक्ष रहता है । अर्जुन एवं भगवान श्रीकृष्ण के प्रारम्भिक वार्तालाप से प्रकटित उनके दृष्टिकोणों से दोनों का अन्तर समझा जा सकता है । गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन युद्ध के मुख्यतः परपरक भावी दुष्परिणामों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करता है, यथा—'युद्ध से कुलक्षय होगा, कुलक्षय से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाएँगी, समाज का ढाँचा बिगड़ जायगा, वर्णसंकर पैदा होंगे और अंत में पितरों को पिण्ड देनेवाला भी कोई नहीं रहेगा । इस प्रकार युद्ध से सर्वनाश हो जायगा ।' भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन की इन बातों का न तो उत्तर दिया और न ही उनका प्रतिवाद किया । युद्ध के परपरक (objective) परिणाम क्या होंगे, इस विषय की पूर्ण उपेक्षा कर भगवान् ने अर्जुन को स्वपरक दृष्टि प्रदान की । यथा—'आत्मा अमर है, और जो असत् है उसका अस्तित्व सम्भव नहीं है । तुम युद्ध के परिणामों की चिन्ता किये बिना हर्ष-विषाद रहित हो स्वधर्म करो । यदि तुम निष्काम भाव से स्वधर्म करोगे तो मुक्त हो जाओगे और सकाम भाव से करने पर मरने के बाद स्वर्ग अथवा विजयी होने पर राज्य का भोग करोगे ।' हाँ, एक-दो स्थानों पर अवश्य भगवान् परपरक हेतुओं का भी उल्लेख करते हैं । यथा—'लोकसंग्रहार्थ कर्म करो, क्योंकि जनसमाज श्रेष्ठजनों के आचरण का अनुसरण करता है ।' यही कारण है कि भगवान् स्वयं मुक्त होते हुए भी कर्म करते हैं, जिससे प्रजा का नाश न हो ।

कर्म के प्रति ये दो दृष्टिकोण वस्तुतः दो परस्परविरोधी मौलिक विचारधाराओं का प्रतिपादन करते हैं । भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं जीवनपद्धति स्वपरक दृष्टिकोण पर आधारित है, जबकि पाश्चात्य दर्शन एवं सभ्यता का मूल परपरक दृष्टिकोण है । भारतीय के लिए उसका अन्तर्जगत् महत्त्वपूर्ण है, जबकि पाश्चात्य व्यक्ति के लिए बाह्य जगत् अधिक सत्य है । भारतीय परम्परा में जगत् मिथ्या, अनित्य, क्षणभंगुर माना गया है, लेकिन पाश्चात्य चिन्तन के अनुसार वह पूर्णरूपेण सत्य है । अतः जहाँ एक भारतवासी संसार का त्याग कर स्वयं की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है, वहीं पाश्चात्य देशवासी इस जगत् को सुधारने, सँवारने एवं सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है । भारतीय साधक यह जानने का प्रयत्न करता है कि कर्म से वह मुक्ति की ओर कितना बढ़ पाया है । पाश्चात्य मानव यह सोचता है कि अमुक कर्म से वह अपने संसार को कितना सुखमय बना सका है ।

स्वामीजी के कर्मयोग का वैशिष्ट्य—

ये दोनों ही दृष्टिकोण अपूर्ण हैं । इन दोनों का सन्तुलित समन्वय ही एक पूर्ण जीवन-दर्शन की सृष्टि कर सकता है और यह समन्वय स्वामी विवेकानन्द की एक महती देन है । स्वामीजी गीता के परम भक्त थे तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'कर्मयोग' एवं इस विषय पर दिये गये अपने व्याख्यानों एवं वार्तालापों में गीतोक्त स्वपरक सिद्धान्त का अनुमोदन किया है । वे कहते हैं कि

संसार कुत्ते की पूँछ की तरह है, जिसे सीधा नहीं किया जा सकता है। संसार का कल्याण करने के प्रयत्न से स्वयं हमारा ही लाभ होता है। संसार में दुःख-कष्ट वैसे ही बने रहते हैं, उनका थोड़ा बहुत फेर-बदल भर हो जाता है। आसक्ति ही बन्धन एवं दुःख का कारण है, अतः अनासक्त होकर कर्म करना चाहिए, इत्यादि। धर्म की परिभाषा करते हुए भी स्वामीजी प्रत्येक आत्मा में निहित ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति को ही जीवन के लक्ष्य के रूप में तथा कर्मयोग को उसकी प्राप्ति के एक उपाय-विशेष के रूप में निर्धारित करते हैं। अपने वार्तालापों में स्वामीजी आचार्य शंकर के इस सिद्धान्त का समर्थन भी करते हैं कि कर्म से चित्त-शुद्धि होती है।

इस प्रकार कर्मयोग के स्वपरक पक्ष को स्वीकारते हुए भी स्वामीजी ने उसके परपरक पक्ष की उपेक्षा नहीं की है। अपने पत्रों, वार्तालापों एवं भारत में दिये गये व्याख्यानों में वे लोक कल्याण, जनहित आदि के लिए भारतवासियों को ओजस्वी भाषा में प्रोत्साहित करते दिखाई देते हैं। उनके अनुसार कर्म के ये दोनों पक्ष—आत्मा की मुक्ति और जगत् का हित—परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि परिपूरक हैं। यह केवल इसलिए नहीं कि जगत्-कल्याण के लिए किये गये कर्म चित्त-शुद्धि करके मुक्ति में सहायक होते हैं, बल्कि स्वामीजी के अनुसार दोनों में कोई भेद नहीं हैं। जब जीव और जगत्, समष्टि और व्यष्टि दोनों में केवल एक ही ब्रह्मसत्ता विद्यमान है, तब जगत् का हित अपना ही हित हुआ

स्वामीजी तो इससे भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं।। वे स्वयं की मुक्ति के प्रयत्न को हीन एवं तुच्छ कहने से भी नहीं चूकते। अपने एक शिष्य की, जो एकान्त में तपस्या करना चाहता था, स्वामीजी ने भर्त्सना करते हुए कहा था कि स्वयं की मुक्ति के लिए प्रयत्न करना स्वार्थ है, और यदि वह ऐसा करेगा तो नरक में जाएगा। जीव-कल्याण की यह शिक्षा उन्हें स्वयं श्रीरामकृष्ण से मिली थी। एक बार स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के समक्ष सदा निर्विकल्प समाधि डूबे रहते की इच्छा व्यक्त की थी। उनके अनुसार इससे भी ऊँची एक अवस्था है—सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन कर जीव-सेवा करने की। श्रीरामकृष्ण चाहते थे कि स्वामीजी संसार के तापित, पीड़ित लोगों को आश्रय एवं शान्ति प्रदान करनेवाले वटवृक्ष के समान होवें। अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में गुरुदेव के श्रीमुख से सुनी यह बात भले ही स्वामीजी उस समय पूरी तरह स्वीकार न कर सके हों, किन्तु परवर्ती काल में उन्होंने इसे स्वीकारा था। वे गरीब, रोगी, दुःखी, पापी-नारायण की सेवा के लिए बार-बार जन्म लेकर हजारों दुःख सहन करने को तैयार थे।

स्वामी विवेकानन्द के स्वयं के शब्दों में, "मानव-जाति को उसके ब्रह्मत्व की शिक्षा देना और यह बताना कि जीवन के प्रत्येक स्तर पर उसे किस प्रकार अभिव्यक्त किया जाय" उनका जीवन-सन्देश है और यही उनके द्वारा प्रतिपादित नववेदान्त का लक्ष्य है। जो लोग स्वामीजी के कर्मयोग को जीवन-व्रत के रूप में स्वीकार करेंगे, वे स्वयं की मुक्ति का प्रयत्न न करके मानवजाति की, समाज के प्रत्येक सदस्य की इस प्रकार सेवा करेंगे जिससे सेव्य अपने चैतन्यस्वरूप को पहचाने, अपने भीतर निहित ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द के प्रति सजग हो तथा उसे अभि-व्यक्त करने का प्रयत्न करे। वे एक ऐसे आदर्श समाज की रचना करने में अग्रसर होंगे, जहाँ समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने अन्तर्निहित ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति का समुचित अवसर प्राप्त हो। निरपेक्ष दृष्टि से जगत् के कल्याण की सम्भावना को अस्वीकार करते हुए भी स्वामीजी सापेक्ष दृष्टि से उसके सुधार की सम्भावना को अस्वीकार नहीं करते। वे एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना करते हैं, जहाँ कोई भी दुःखी न होगा, प्रेम एवं सद्भावना का साम्राज्य होगा, रोग-शोक का अभाव होगा, पशुबल का कोई स्थान न होगा, जहाँ केवल एक ही जाति—ब्राह्मण जाति—होगी तथा जिस सत्ययुग में मनुष्य दैवी सम्पद् सहित जन्म-ग्रहण करेंगे।

मानव में प्रसुप्त चैतन्य सदा अपने को अभिव्यक्त

करने का प्रयत्न कर रहा है। यह प्रयत्न उसकी अभिव्यक्ति में बाधक प्रकृति के नियमन एवं उस पर विजय के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति भी दो प्रकार की है—अन्त: और बाह्य। भौतिक विज्ञान की सहायता से बाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करना पाश्चात्य देशों का मुख्य लक्ष्य रहा है, जबकि भारतीय सभ्यता अध्यात्म-विद्या एवं योग की सहायता से अन्त: प्रकृति पर विजय प्राप्त करने पर आधारित रही है। स्वामीजी का वैशिष्ट्य इसमें है कि उन्होंने इन दोनों प्रयासों को मानव के ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति के दो पहलुओं के रूप में स्वीकार किया है। ज्ञान, योग, भक्ति, इन्द्रियनिग्रह एवं मनोनिग्रह आदि जिस प्रकार मानव की अन्त: प्रकृति के नियमन के उपाय एवं ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति की प्रचेष्टाएँ हैं, उसी प्रकार विज्ञान, साहित्य, कला, व्यापार वाणिज्य, उद्योग एवं तकनीकी भी बहि:प्रकृति के नियमन के उपाय एवं तद्द्वारा ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति के प्रकार हैं। यही कारण है कि प्रागैतिहासिक काल से आज तक किये गये मानव के सभी प्रयास एवं प्रगति, उसके सभी क्रिया-कलाप स्वामी विवेकानन्द की अभिरुचि के विषय थे। स्वामीजी के आविर्भाव के बाद कर्म और उपासना, सेवा और साधना, परिश्रम एवं प्रार्थना में अन्तर समाप्त हो गया है। खेतों में हल चलाना या देवालय में आरती करना, विद्यालय में शिक्षा देना अथवा धर्मशास्त्रों का अध्ययन करना, कारखाने में काम करना या आँखें मूँदकर ध्यान करना समान हो गये हैं।

शिव-ज्ञान से जीव-सेवा—

स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग का विशिष्ट रूप है सेवा—शिव-ज्ञान से जीव-सेवा। एक ओर जहाँ यह आत्मा की मुक्ति का उत्कृष्ट उपाय है, वहीं दूसरी ओर यह जगत् हित का प्रभावशाली साधन भी है। मोक्ष के उपाय के रूप में इसमें ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग, चारों का समावेश हो जाता है। सेव्य मेरी आत्मा का ही एक अंग या रूप है, यह ज्ञान इसे ज्ञानयोग में परिणत कर सकता है। सेव्य शिव अथवा मेरा इष्टदेव है, इस प्रकार की दृष्टि से की जानेवाली सेवा भक्तियोग का रूप ग्रहण कर लेती है। सेवा के लिए आवश्यक एकाग्रता एवं मानसिक प्रशिक्षण इसमें योग का अंशदान करता है और कर्म तो इसका अविभाज्य अंग है ही।

सेवा के परपरक पक्ष में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इसका उद्देश्य सेव्य के अन्न-वस्त्र की आपूर्ति अथवा उसे विद्यादान मात्र नहीं है। सेव्य की तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति प्रयोजनीय होते हुए भी सेवा का अन्तिम लक्ष्य सेव्य को उसके अपने भीतर प्रसुप्त देवत्व या ब्रह्मत्व के प्रति जाग्रत् करना एवं उसे अपने पैरों पर खड़ा करना है, जिससे वह पूर्ण ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द का अधिकारी बन सके। उसके भीतर का ब्रह्मत्व तो सदा ही अभिव्यक्त होने का प्रयत्न कर रहा है; सेवा एवं शिक्षा का उद्देश्य अभिव्यक्ति की बाधाओं को हटा देना मात्र है, न कि बाहर से कुछ थोपना और न ही सेव्य को सेवक पर आश्रित बना देना। यही कारण है कि स्वामीजी सेवा से अधिक शिक्षा पर जोर दिया करते थे। मानव जहाँ है, उसे वहीं से उठाओ, उसके आत्मविश्वास को जागाओ, स्वयं को प्रसुप्त शक्ति के प्रति सजग करो और उसे अपनी व्यक्तिगत सहज प्रकृति एवं स्वभाव के अनुसार विकसित होने दो—यही स्वामी विवेकानन्द की सेवा एवं शिक्षा के सिद्धान्त हैं।

स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग के अधिकारी के लक्षण—

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि स्वामीजी प्रतिपादित कर्मयोग मानव की सर्वांगीण प्रगति का एक विशिष्ट उपाय है, जिसे करने के लिए कुछ गुणविशेष आवश्यक हैं। जिस प्रकार ज्ञानयोग में सफल होने के लिए यम-नियम-आसन-प्राणायामादि की आवश्यकता है, उसी प्रकार स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग के लिए हृदयवत्ता, बुद्धिमत्ता एवं व्यावहारिक क्षमता की आवश्यकता है। क्या ऐसे कर्मयोगी में हृदय की अनुभव-शक्ति होती है? क्या वह असंख्य पीड़ित, दरिद्र, अज्ञानी नर-नर नारियों के दु:ख को स्वयं अनुभव

कर सकता है ? कितनी तीव्र है उसकी अनुभव-शक्ति ? यदि वह मानव के दुःख दर्द को ऐसी तीव्रता से अनुभव कर सकता है कि उसकी नींद ही हराम हो जाय तो वह आदर्श कर्मयोगी बन सकता है। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसमें दूसरों के दुःख-दर्द दूर करने के उपाय सोच निकालने की भी सामर्थ्य होनी चाहिए, अन्यथा उसकी हृदयवत्ता कोरी भावुकता बनकर रह जायगी। उसे तीक्ष्णबुद्धि होना होगा जिससे वह समस्या की गहराई में जाकर स्थायी समाधान खोज सके। तदनन्तर उसमें उस समाधान को कार्यरुप देने की क्षमता भी होनी चाहिए। उसमें इतनी दृढ़ता, साहस और लगन होनी चाहिए कि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति सभी बाधाओं को दूर कर सिद्ध काम हो सके।

सर्वोपरि, उसमें यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि जिसकी वह सेवा करने जा रहा है, वह नारायण है। स्वयं के चैतन्यस्वरूप के प्रति किसी न किसी मात्रा में सजग हुए बिना सेव्य मानव में नारायण का भाव रखना सम्भव नहीं है। विशेषकर दुष्ट, व्यग्र, क्रोधी व्यक्ति में—रोग, शोक, अपराध एवं मानसिक विकृति से ग्रसित मानव में—नित्य- शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव आत्मा का प्रकाश पहचानना अत्यन्त कठिन है। सदियों से देव-विग्रहों में भगवान् को देखने का अभ्यास करते-करते आज यह हमारे लिए अत्यन्त सहज हो गया है। सड़क के किनारे किसी वटवृक्ष के नीचे बने छोटे-से मन्दिर को देखकर हमारा मस्तक अनायास ही झुक जाता है, हाथ अपने आप प्रणाम में जुड़ जाते हैं। मानव में भगवान् का अधिक प्रकाश होते हुए भी हम मानव में पापी या सन्त, धनी या दरिद्र को ही देखते हैं; परमात्मा को नहीं। स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोगी को ब्राह्मण-शूद्र, पण्डित- मूर्ख, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी में निरन्तर नारायण को, शिव को देखने का प्रयत्न करना होगा। स्वयं के ब्रह्मत्व में दृढ़प्रतिष्ठ एवं सभी प्राणियों के देवत्व में पूर्ण आस्थावान् हजारों कर्मयोगियों के सदियों तक सतत प्रयास से एक समय ऐसा आएगा जब मानव-समाज के लिए दरिद्र, अज्ञानी, पापी में भी परमात्मा को देखना उतना ही सहज एवं स्वाभाविक हो जायगा जितना कि आज प्रस्तरमूर्ति में चैतन्य की उपस्थिति का अनुभव करना।

उपसंहार—

स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग का उद्देश्य स्वयं की मुक्ति ही नहीं, बल्कि जगत् का हित भी है। उसका लक्ष्य साधक को मोक्षलाभ करवाने के साथ ही स्वयं ऐसे आदर्श समाज की रचना करना भी है, जो भौतिक दृष्टि से समृद्ध हो तथा जिसके प्रत्येक सदस्य को आध्यात्मिक विकास का भी समुचित अवसर प्राप्त हो। इसे कर पाने के लिए यह आवश्यक है कि हम मुक्ति एवं जगत-हित, स्वपरक एवं परपरक के अन्तर को पाट दें एवं दूसरे के चैतन्यस्वरूप के प्रति उतने ही आस्थावान् बनें जितने कि अपने स्वरूप के प्रति। स्वामीजी प्रतिपादित कर्मयोग एक ऐसी साधना है, जिसमें साधक तभी सिद्धिलाभ कर सकता है, जब उसके हृदय, मस्तिष्क एवं कार्यक्षमता का सन्तुलित एवं समुचित विकास हो।

विद्यालयों में नैतिक और धार्मिक शिक्षा

—स्वामी हर्षानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

आजादी के बाद हमारे देश ने अद्भुत प्रगति की है। हम बालपीन से लेकर उपग्रह तक सभी छोटी बड़ी वस्तुएँ स्वदेश में ही तैयार कर रहे हैं। क्या यह प्रगति का लक्षण नहीं है? अवश्य ही यह प्रगति का लक्षण है, लेकिन प्रगति का सिर्फ एक लक्षण मात्र है, एक पक्ष है।

प्रगति का एक और पक्ष देखिए—नव निर्मित मकान अचानक ढह जाता है और अनेक मजदूर उसके नीचे दब कर मर जाते हैं। परसों पूरा हुआ बांध कल की बरसात से टूट कर भयंकर बाढ़ में परिणत हो जाता है और आसपास के सब गाँव मिट जाते हैं। प्राणांतक रोग से ग्रस्त रोगियों को भी अस्पताल में जगह नहीं मिलती है। अगर मिली भी तो वहाँ की 'अद्भुत चिकित्सा' से रोगी यमराज के प्रत्यक्ष दर्शन पा सकता है। दुकान के तेल में बने हुए पकौड़े खाकर लोग पार्श्ववायु से बीमार हो जाते हैं। उपद्रवियों से पीड़ित निरीह व्यक्ति जब आरक्षकों के पास जाकर शिकायत करता है, तब शिकायत करने वाला ही दंडित होता है। न्याय वितरण के लिए नियुक्त लोग उन्हीं के पक्ष में फैसला देते हैं, जो 'दक्षिणा' देते हैं। विद्यामंदिर, जिन्हें सरस्वती-मंदिर कहा जाता है, वहाँ अकसर लक्ष्मी के कृपा-कटाक्ष से प्रवेश, अंक, परीक्षा में उत्तीर्णता एवं उत्तम श्रेणी आदि प्रदान की जाती है। देव मंदिरों में भी वे लोग, जो अधिक उपहार देते हैं, देवता का 'तुरंत दर्शन' पा सकते हैं।

क्या ये भी 'प्रगति' के लक्षण नहीं हैं? अथवा 'प्र-गति', परमेश्वर ही हमारी गति है?

ऐसा क्यों हो रहा है? 'सीमेंट में बालू का, तेल में जहर का, इसमें उसका, उसमें इसका मिश्रण हो गया था, इसलिए.....' ऐसी संज्ञा परंपरावश दी जा सकती है। किन्तु सीमेंट में बालू की मिलावट क्यों? तेल में जहर का मिश्रण क्यों? इसका मूल कहाँ है? सबसे पहले हमारे मन में लोभ का मिश्रण हो गया। इसी से तो सारे अपघात हुए हैं न? यदि हम मूल कारण को जानकर उसे वहीं ठीक न करें और ऊपरी उपचार से समस्या का परिहार करना चाहें, तो यह संभव नहीं। अग्नि में हाथ डालने के बाद हम सोचें कि वह हमें न जलाए, क्या यह अविवेक की परिसीमा नहीं?

इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'पहले तुम स्वयं आदर्श बनो। बाद में दूसरे लोगों को आदर्श रूप बनाओ।' अगर शिक्षकों और रक्षकों की ही बुनियाद अस्थिर है, तो वे समाज का शिक्षण या रक्षण कैसे कर सकते हैं? अगर वे ही भक्षक बन जाएँ तो समाज की क्या गति होगी?

आज हमारे देश और समाज के अनेक बुद्धिमान, विचारवान लोग इस समस्या को पहचान रहे हैं। लेकिन जिसके दाँत है, उसके पास चने नहीं; जिसके पास चना है, उसके पास दाँत नहीं। जिसके पास अधिकार है, उसको ज्ञान नहीं। जिसको ज्ञान है उसे अधिकार नहीं। प्रायः आज अधिकारियों में सत्चारित्र्य की कमी है और सच्चरित्र लोग अधिकार विहीन हैं।

बुनियाद मजबूत हो, तो मकान का भी मजबूत होना संभव होता है। व्यक्ति सच्चरित्र हो तो समाज भी उत्तम और सुसंस्कृत हो सकता है। ऐसे समाज के द्वारा निर्मित मकान या बाँध अडिग हो जाते हैं। चिकित्सालय प्राणधाम और आरोग्यधाम बन जाते हैं। दुकान का आहार भी अमृत हो जाता है। आरक्षक लोग निर्बलों की रक्षा में

अपने प्राण भी दे देते हैं । न्यायाधीश न्याय-पालन के लिए सरकार का भी सामना कर सकते हैं । 'विद्यावधालय' सच्चे विद्यालय, सरस्वतीमंदिर बन जाते हैं । देवालयों में ईश्वर-सान्निध्य का अनुभव होता है । ऐसे समाज में जन्म लेनेवाला व्यक्ति शक्तिसम्पन्न बन जाता है, जीवमानव देवमानव हो सकता है ।

किन्तु ऐसे समाज का निर्माण अल्पकाल में संभव नहीं हो सकता । दीर्घकाल तक निरंतर, श्रद्धापूर्वक प्रयत्न के द्वारा ही यह संभव है । बिना दुःख भोगे, सुख कहाँ ? साधन बिना सिद्धि कहाँ ? सभी काम प्रयत्न से होते हैं, जादू से नहीं ।

ऐसा प्रयत्न, जिससे हर व्यक्ति अपने जीवन में आदर्श के अनुसरण के बाद दूसरों को भी अनुप्राणित कर सके, समाज के सभी क्षेत्रों में अपेक्षित है । तो भी शिक्षा के क्षेत्र में, विशेषतः बच्चों के विद्यालयों में तो इसकी आवश्यकता बहुत ही अधिक है । पौधा झुक सकता है, पेड़ नहीं । इसीलिए बचपन में ही दी गयी नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा प्रभावशाली होती है ।

बच्चों को नैतिक शिक्षा देनी चाहिए या नहीं ? अगर देनी चाहिए तो प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से ? या परोक्ष रूप से ? उसके साथ धार्मिक शिक्षा भी होनी चाहिए या नहीं ? हमारे देश में तो अनेक धर्म हैं । इसलिए धार्मिक शिक्षा कैसे दी जा सकती है ? इन सभी विषयों पर अब तक काफी चर्चा हुई है । प्रवीण लोग कुछ अंशों के विषय में सहमत हुए हैं । जैसे १. नैतिक शिक्षा आवश्यक है । २. इसे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों से दे सकते हैं । ३, धर्मों में विविधता होते हुए भी जो नीतिसंहिता और तत्व सभी धर्मों में समानवत हैं, समन्वय के दृष्टिकोण से उनका उपदेश साध्य है । यह कहना अनावश्यक है कि ये नैतिक और धार्मिक तत्व आपस में पूरक हैं । ये ही विश्वमानव तत्व का प्रारंभ हो सकते हैं ।

अब इस शिक्षा-विधान के बारे में दो बातें विचारणीय हैं । प्रथम चरण में नैतिक शिक्षा कहानियों के द्वारा तथा दूसरे चरण में माध्यमिक एवं प्रौढ़ कक्षाओं में महापुरुषों की जीवनियों द्वारा शाश्वत मूल्यों की शिक्षा देनी चाहिए । प्रौढ़ कक्षा में साक्षात रूप से मूल्य-शिक्षण दिया जा सकता है । कॉलेज और विश्वविद्यालयों में नीतिशास्त्र, तत्वशास्त्र और संसार के प्रधान धर्मों की रूपरेखाओं का परिचय अवश्य होना चाहिए । पारम्भिक अवस्था में व्यक्ति का स्वास्थ्य, सामाजिक निर्मलता और सुसंस्कृत आचार-व्यवहार भी सिखाना होगा । इसी प्रकार देहशक्ति, मनोबलों के संवर्धन को भी शिक्षाक्रम में शामिल करना होगा ।

इस संदर्भ में एक और विशेष बात विचारणीय है । हमारे बच्चों और युवाओं में मातृभूमि के बारे में, उसके इतिहास एवं संस्कृति के बारे में, गौरव उत्पन्न करना । लेकिन यह गौरव दुरभिमान न हो, यह स्वदेशनिष्ठा परदेश-द्वेष न हो । सभी लोगों और सभी देशों में जो भी अच्छा है, उसे हमें ग्रहण करना चाहिए । इसी प्रकार हमारे समाज में जो दोष हैं, उन्हें पहचान कर उनको दूर करना चाहिए । शिक्षापद्धति में इन्हें भी सम्मिलित करना होगा । धार्मिक शिक्षण देते समय सभी धर्मों के प्रति पूज्य भावना पैदा करना भी बहुत आवश्यक है ।

ऐसी शिक्षा देने के पहले उसकी पूर्व योजना तैयार होनी चाहिए, तथा इसके लिए उत्तम शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए । इसका प्रारंभ महाविद्यालयों से होना चाहिए । वहाँ शिक्षाविज्ञान, मनोविज्ञान के साथ साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और धार्मिक मूल्यों को भी सिखाना चाहिए । इसके लिए महाविद्यालय परिसर को भी विशेष श्रमपूर्वक निर्मित करना होगा वहाँ के शिक्षकों को आदर्श से प्रेरित होना चाहिए । बढ़ते हुए बच्चों पर घर और समाज के वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है । अतः माता-पिता, गुरुजन और समाज के विभिन्न क्षेत्रों के नेतागण यदि अपने जीवन को उत्तम और आदर्श रूप बनाने हेतु कुछ भी प्रयत्न नहीं करेंगे, तो शिक्षाक्षेत्र में किये गये सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे ।

अंत में एक बात और । यदि हम मद्यपान की पीड़ा को निर्मूल करने का और सिनेमा, टेलीविजन और वीडियो को सुसंस्कृत बनाने का शत-शत प्रयत्न नहीं करेंगे, तो यह देश और समाज उत्तरोत्तर रसातल में चला जायेगा, इसमें कोई संदेह नहीं ।

योग, योगी और युक्त

.. स्वामी वेदान्तानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

ईश्वर की निकटता के अनुभव अथवा आत्मा के स्वरूप की उपलब्धि के लिए की जाने वाली साधना को योग कहा जाता है। गीता का प्रत्येक अध्याय भिन्न-भिन्न योग के नाम से अभिहित होने पर भी सभी अध्यायों में कर्मयोग, ध्यानयोग ज्ञानयोग एवं भक्तियोग — इन चार साधन पथों को विशेष प्रधानता दी गयी है। गीता के षष्ठ अध्याय का नाम है ध्यानयोग। इस अध्याय के प्रायः सभी श्लोकों में ध्यानयोग का विषय विवेचित हुआ है। अन्य तीन योगों का विषय अनेक अध्यायों में फैला हुआ है। इस निबन्ध में योग, योगी एवं युक्त, इन तीन पदों का उल्लेख है। इन श्लोकों का एक साथ विवेचन किया जायगा।

द्वितीय अध्याय के ६१ वें श्लोक में व्यवहृत 'युक्तः' पद का अर्थ योगाभ्यास में रत व्यक्ति प्रतीत होता है, अथवा ईश्वर चिन्तन में एकाग्रचित्त व्यक्ति भी इसका अर्थ हो सकता है। केवल मात्र विचार के द्वारा इन्द्रियों को अपने वश में नहीं रखा जा सकता है। उन्हें वशीभूत करने के लिए प्रबल इच्छाशक्ति और ईश्वर में विश्वास की आवश्यकता है। इस श्लोक का अर्थ है --ईश्वर-विश्वासी व्यक्ति इन्द्रियों को चंचल नहीं होने देकर ईश्वर की निकटता के अनुभव की साधना में स्वयं को नियुक्त रखेंगे। इन्द्रिय संयम में समर्थ व्यक्ति के ज्ञान में कमी नहीं होती।

३/३ श्लोक में 'ज्ञान योगेन' एवं 'कर्मयोगेन' इन दो पदों के अन्तर्गत योग शब्द का अर्थ है साधन पथ। और 'योगिनाम्' पद का अर्थ है निष्काम कर्म के अधिकारी लोग। मनुष्य के मन के गठन और स्वाभाविक प्रकृति के भेद से साधना के दो मुख्य पथ हैं। जिनकी प्रकृति स्वाभाविक विचारप्रवण है, वे सांख्य योग अर्थात् ज्ञानयोग के मार्ग का अवलम्बन करते हैं। विषय भोग के प्रति उनलोगों में विशेष आकर्षण नहीं रहता, वे अपने एवं जगत् के स्वरूप के विचार में निरत रहना पसन्द करते हैं; और जिनलोगों का मन चंचल होता है, हर घड़ी कुछ न कुछ कार्य करने का उत्साह प्रबल होता है, वे लोग कर्मयोग के मार्ग का अवलम्बन करते हैं—सभी कर्मों के फल ईश्वर को समर्पित कर, अभिमान रहित होने की सधना में रत रहते हैं।

३/७ वें श्लोक के 'कर्मयोगम्' पद का अर्थ है— निष्काम कर्मानुष्ठान के सहारे ईश्वर का स्मरण करना। पूर्ववर्ती श्लोक में कहा गया है कि इन्द्रिय संयम के द्वारा विषयों के चिन्तन का परित्याग करने में असमर्थ जो व्यक्ति शारीरिक कार्यों को छोड़कर योगी का बाना धारण कर लेता है, वह भण्ड होता है। जो व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों को मन के द्वारा वशीभूत रखकर ईश्वर के प्रीति-साधन के उद्देश्य से नाना कार्य करते हैं, वे योगी वेशधारी व्यक्ति से श्रेष्ठ होते हैं।

४/२५ वें श्लोक के 'योगिनः' शब्द का अर्थ है, जो शास्त्र में उपदिष्ट कर्मकाण्ड में विश्वास रखने वाले लगो हैं जो देवताओं की तुष्टि के उद्देश्य से अनेक प्रकार के योग-यज्ञादि के अनुष्ठान करते हैं।

यज्ञ कहने से साधारणत; प्रज्वलित अग्नि में घृत एवं घृत के साथ अनेक प्रकार के पदार्थों की आहुति देना समझा जाता है। किन्तु गीता में अनेक प्रकार के यज्ञों की बात कही गयी है, जिन यज्ञों में किसी वस्तु का प्रयोजन नहीं होता। ४२७वें श्लोक में 'आत्मसंयम-योगाग्नौ' पद है। देह इन्द्रिय मन की हर प्रकार की क्रिय

को वशीभूत कर एकमात्र आत्मा के शुद्ध स्वरूप के ध्यान में मग्न रहने को आत्मसंयम योग कहा गया है। इस प्रकार ध्यान की सामर्थ्य की अग्नि से तुलना की गयी है। आग में जिस किसी वस्तु की आहुति दी जाती है वे सब जिस प्रकार भस्म होकर अपना अस्तित्व मिटा देती हैं उसी प्रकार आत्मध्यान में निमग्न साधक की कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय एवं प्राणवायु की सभी वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं।

४/३८ वें श्लोक के 'योग संसिद्ध' पद का अर्थ है योग्यता प्राप्त व्यक्ति। जितने प्रकार की साधन पद्धतियाँ हैं उन सब में आत्मज्ञान की साधना श्रेष्ठ है। किन्तु ज्ञाननिष्ठ होने के लिए विशेष मानसिक योग्यता एवं प्रस्तुति की आवश्यकता है। धैर्य धारण कर लम्बे अर्से तक अनुशीलन करने पर साधक आत्मज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होता है। इसी से अनेक साधक ज्ञानयोग का अवलम्बन नहीं कर दूसरे प्रकार की साधना की ओर आकृष्ट होते हैं।

४/४१ वें श्लोक में 'योगसंन्यस्त कर्माणं' पद के योग शब्द के द्वारा भक्तियोग जाना जाता है। भक्ति मार्ग के अवलम्बन से साधक जब समस्त कर्मों के फल ईश्वर को समर्पण करने में समर्थ होते हैं तब वे अपने को फिर किसी कार्य का कर्त्ता नहीं मानते। सभी कार्य ईश्वर की इच्छा से होते हैं— ऐसा दृढ़ अनुभव उन्हें होता है। कार्य का कौन कर्त्ता है, इस विषय में उन्हें संशय नहीं रहता। इकार भ्रम-प्रमाद रहित होकर लोक-कल्याण के लिए जो कार्य करते हैं, उस कार्य के फल स्वरूप वे किसी व्यक्ति या विषय के साथ अपने को युक्त नहीं करते, कार्य की सफलता पर उल्लास का बोध नहीं करते और प्रयास के विफल होने पर वे दुःखित नहीं होते।

५/६ वें श्लोक के 'ब्रह्मयोग युक्तात्मा' पद के योग शब्द का अर्थ है ध्यान के प्रभाव से चित्त की एकाग्रता। समस्त पद का अर्थ यह है, ध्यान योग के द्वारा जिन्होंने ब्रह्म के साथ अपने भेद-भाव का अनुभव किया है।

५/२३ वें श्लोक के 'युक्त' पद का अर्थ है, आत्मा के स्वरूप के विषय में निपुण ज्ञान योगी। जाग्रत अवस्था में आँख, कान आदि इन्द्रियों के कार्यक्षम रहने पर उनके साथ रूप, शब्द आदि विषयों का संस्पर्श होना स्वाभाविक है। किन्तु जो अपने को देह इन्द्रिय मन से भिन्न चेतन सत्ता मानते हैं, वे कामोपभोग के विषयों के अपने अधीन होने पर भी भोगवासना का प्रतिरोध करने में समर्थ होते हैं एवं भोग के कार्यों में किसी प्रकार की रुकावट आने पर उनके मन में क्रोध का उदय नहीं होता। इस तरह इन्द्रिय संयम में समर्थ व्यक्ति ही प्रकृत रूप से स्थायी सुख का अनुभव करते हैं; असंयत भोगी व्यक्ति का सुख सामयिक होता है।

परवर्ती ५/२४ में श्लोक में व्यवहृत 'योगी' पद से उक्त प्रकार के ज्ञानयोगी समझे जाते हैं। साधारण मनुष्य सांसारिक विषयों में सुख का अनुभव करता है। किन्तु भोग के फलस्वरूप वह आजीवन क्षणिक सुख भोग ही कर पाता है। तथापि जिन्होंने विषयों में सुख की खोज करना छोड़ दिया है, लेकिन अपने स्वरूप के चिन्तन में जो सुख और आनन्द का अनुभव करते हैं जिनकी दृष्टि वाह्य विषयों में आकृष्ट नहीं होकर हर समय अन्तर्मुखी रहती है, वे इस जीवन में ही स्वयं को चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप ब्रह्म अनुभव करते है।

७/१ श्लोक में 'योग युंजन्' पद का अर्थ है, मन को एकाग्र कर ईश्वर-चिन्तन में रत रहना। निराकार निर्गुण ब्रह्म सगुण ईश्वर के रूप में जगत की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के निमित्त एवं उपादान कारण बनकर प्रकाशित होते हैं। भक्तगण सगुण ईश्वर की उपासना करते हैं, उनके गुण कर्म एवं अनेक विचित्र लीलाओं का दर्शन एवं अनुभव करते हैं। गीता के सप्तम अध्याय की विवेचना का विषय ईश्वर के अनेक रूपों में प्रकाश है।

७/३० वें श्लोक के 'युक्त चेतसः' पद का अर्थ है, हर समय ईश्वर के चिन्तन में रत व्यक्तिगण। जो सदैव इन्द्रियों के समक्ष प्रकाशित विषयों को एक ही ईश्वर के प्रकाश के रूप में अनुभव करते हैं, वे मृत्यु के समय भी

ईश्वर-चिन्तन को नहीं भूलते ।

९/५ श्लोक के 'योगम्' पद का अर्थ है असंभव को संभव करने की शक्ति ।

९/२२ श्लोक के 'नित्याभियुक्तानां' का अर्थ है, हर घड़ी ईश्वर का स्मरण करने में अभ्यस्त भक्तगण । इस श्लोक के 'योगक्षेम' पद का 'योग' कहने से अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति समझा जाता है । 'क्षेमं' का अर्थ है रक्षण करना ।

९/२८ श्लोक के 'संन्यास योग युक्तात्मा' पद का प्रथमांश 'संन्यास योग' कहने से ईश्वर को सभी कर्मों का फल समर्पण करने की साधना, समझना होगा । पद के दूसरे अंश 'युक्तात्मा' का अर्थ होता है, उक्त प्रकार से जिनका चित्त सर्वदा ईश्वर-चिन्तन में नियुक्त है ।

१०/७ श्लोक के 'योगं' पद का अर्थ है, शक्ति । इस श्लोक के 'योगेन' पद के द्वारा 'ईश्वर के स्वरूप का अनुभव' कहा गया है ।

११/८ श्लोक के 'योगम्' पद का अर्थ है, जो कार्य असम्भव प्रतीत होता है उसे करने की शक्ति ।

१२/२ श्लोक के 'नित्य युक्ताः' पद का अर्थ है, जो शरीर और इन्द्रियों के सारे कार्य ईश्वर की सेवा में लगाये रखते हैं एवं मन ही मन सर्वदा ईश्वर का स्मरण करते हैं, वे इस श्लोक के 'युक्ततमाः' शब्द का अर्थ है, जो मन-प्राणों से हर घड़ी ईश्वर की अनेक रूपों से सेवा करने में समर्थ हैं, वे श्रेष्ठ योगी हैं ।

१२/६-७ श्लोक में 'अनन्येन एव योगेन' ये पद मिलते हैं । अनन्य योग कहने से समझा जाता है, एक ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी देव देवी की उपासना में आकर्षण का नहीं रहना; ऐसी एक निष्ठा भक्ति उत्पन्न होने पर किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति 'मेरा आपका' जैसा अनुभव नहीं होता ।

जो हर घड़ी समस्त कार्यों के बीच ईश्वर चिन्तन में मनोनिवेश करने में असमर्थ हैं, उनके लिए कहा गया है; 'अभ्यास योगेन' ईश्वर प्राप्ति के लिए सदा प्रयास करना होगा । चंचल मन को बार-बार आन्तरिकतापूर्वक ईश्वर चिन्तन में लगाये रखने के लिए जो प्रयास करते हैं, वे ही साधक ईश्वर के प्रकाश का अनुभव कर धन्य हो जाते हैं । (१२/९)

१२/११ श्लोक के पदयोगम्' पद के द्वारा 'ईश्वर के चिन्तन में मन का अभिनिवेश' प्रतीत होता है । अभ्यास के द्वारा भी जब मन को ईश्वर-चिन्तन में निविष्ट रखना नहीं संभव होता तब साधक के लिए यह करणीय होगा कि वे कार्यफल की प्राप्ति की आकांक्षा का त्याग कर ईश्वर के लिए शारीरिक या मानसिक कार्य में समय और शक्ति का नियोग करें ।

द्वादश अध्याय के १३ और १४ वें श्लोक में ईश्वर के प्रिय भक्तों का लक्षण बताया गया है । भक्ति लाभ करने के लिए इन सब सद्गुणों का अनुशीलन एवं अर्जन करने की आवश्यकता है । चौदहवें श्लोक में कथित 'योगी' पद के द्वारा संयत चित्त साधक समझा जाता है ।

१३/२४ वें श्लोक में ईश्वर-प्राप्ति के लिए चार उपाय बताये गये हैं । श्लोक की प्रथम पंक्ति में ज्ञान योग की बात है । कहा गया है कि कोई-कोई साधक शरीर को स्थिर रखकर विचार के द्वारा स्वयं को शुद्ध आत्मस्वरूप अनुभव करते हैं । श्लोक के द्वितीय अंश में पहले सांख्यमतावलम्बी साधकों की चर्चा है । वे विचार करते हैं कि चौबीस तत्वों से युक्त जड़ प्रकृति से चेतन पुरुष पूर्णतः भिन्न हैं । वे विचार के द्वारा अपने को चेतन स्वरूप समझते हैं । परवर्ती 'ध्यानेन' पद के द्वारा चित्तवृत्ति-निरोध के सहारे अपने को जानने की चेष्टा समझना चाहिए । वे यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा और ध्यान—राज योग के इन आठ उपायों के सहारे साधना करते हैं । श्लोक के अंत में कहा गया है कि कर्मयोग के द्वारा भी कोई-कोई ईश्वर को प्राप्त करते हैं ।

उद्भ्रान्त युवक : मेरी समझ

—रविशंकर प्रसाद

रसायन प्रतिष्ठा, बिहार विश्वविद्यालय

(इस अंक के साथ हम युव-मंच की स्थापना कर रहे हैं। युवमंच, अर्थात् युवजनों का मंच। इसमें युवजन अपने परिवेश और देश की वर्तमान समस्याओं और स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि से उनके समाधान पर अपने विचार प्रस्तुत कर सकेंगे। दृष्टि स्वामीजी की होगी, चिन्तन युवजनों का होगा। हम अपने देश के युवजनों से अपनी रचनाएँ भेजने का आग्रह करते हैं जो तीन पृष्ठों से अधिक की न हो।—सं०)

युग पुरुष स्वामी विवेकानन्द। भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के पूज्य। तपस्वियों की तपस्या, वैरागियों के वैराग्य, प्राचीन भारत की जीवनदायी संस्कृति के उद्बोधक, प्रगतिशील भारत की नींव, प्रत्येक मानव के अपने, सम्पूर्ण विश्व के युवजनों की सतत् प्रेरणा—क्या कुछ नहीं हैं परम वंद्य स्वामीजी? उनका सम्पूर्ण जीवन ही गतिशील है। व्यक्तित्त्व की विराट्ता ऐसी कि सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो गये।

संसार के चिन्तकों ने स्वामीजी के व्यक्तित्त्व को पूर्णता के साथ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिस्थापित किया है। परन्तु जब हम ऐसी महान् आत्मा के खुद के विचारों का मनन करते हैं—तो मस्तिष्क में एक आकृति उभरती है, युवक की आकृति। स्वामीजी का मस्तिष्क भले ही सम्पूर्ण जीवन की समस्याओं के निदान में जूझता रहा हो, परन्तु उनकी आत्मा में था युवक, उनके विश्वास का केन्द्र है—युवक।

"मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नव युवकों पर है।"—यही स्वामीजी की टेक थी। आखिर ऐसा क्यों? उत्तर साधारण-सा है। मानव जाति के लघु जीवन की संतुलित अवस्था है उसकी युवावस्था। एक युवक स्वामी होता है अनन्त शक्ति का, अनन्त साहस का, असीम उत्साह का और अनन्त धैर्य का। उसकी मांसपेशियों में शक्ति होती है—कर्म की, उसके मस्तिक में उत्साह होता है—निर्माण का और उसके मन मे उमंग होती है—प्रेम की, सेवा की, उत्सर्ग की। फिर क्यों न युवक से अपेक्षाएँ की जाय?

आज का विश्व—हमारा स्वदेश, हमारी माता, हमारे पिता, हमारे बंधु-बांधव सब व्यग्र हैं, व्याकुल हैं। किसी को भी शान्ति नहीं, कहीं भी चैन नहीं। सभी दौड़े जा रहे हैं, पर मंजिल मिल नहीं रही है। जीवन के भौतिक ताप में तप रहें हैं, जल रहे हैं—पर शान्ति की छाँव कहाँ? कारण क्या हो सकता है इसका? जो भी हो, आश्चर्य तो इसे देखकर है कि हमारे इष्ट स्वामीजी का विश्वास ही बिखरता जा रहा है। उनकी आशाएँ ध्वस्त होती सी नजर आ रही हैं। किस उत्साह से उन्होंने भारत के युवकों को—सच्चे युवक की संज्ञा दी थी। रूढ़िवादिता और गुलामी के कंटकाकीर्ण मार्गों को असीम प्रेम से, बंधुत्व के ज्योतिर्मय प्रकाश से, प्रकाशित किया था उन्होंने। सारी समस्याओं का निदान कर उन्होंने केवल एक ही चुनौती तो दी थी हम नवयुवकों को—एक ऐसे भारत के निर्माण की चुनौती जहाँ प्रेम हो, जहाँ कोई दरिद्र नहीं कहलाये, जहाँ दरिद्र भी भगवान् हों। तभी सम्पूर्ण विश्व की प्रेरणा की मिसाल

बन पायेगा हमारा भारत। कैसा विश्वास था युवकों में स्वामीजी का कि उनकी आत्मा पुकार उठी थी :

"केवल मनुष्यों की आवश्यकता है; और सब कुछ हो जायगा, किन्तु आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी श्री सम्पन्न और अंत तक कपटरहित नवयुवकों की। इस प्रकार के सौ नवयुवकों से संसार के सभी भाव बदल दिये जा सकते हैं।"

आज की स्थिति हमसे छिपी नहीं है। हम देख रहे हैं कि किस तरह हमारा भारत खोखला होता जा रहा है। युग का जुआ—युवक ही विकृत हो चुका है। उसकी विक्षिप्तता बड़ी ही करुण है। तभी तो युवक के कर्म की शक्ति कुकर्म को प्रतिफलित कर रही है, निर्माण का उत्साह विध्वंस में विश्वास करने लगा है, प्रेम और सच्चाई की उमंग हिंसा, घृणा झूठ और फरेब की आग में झुलस रही है। लाखों-हजारों एटम बमों की विनाशलीला से भी अधिक विध्वंसकारी होगा युवकों का प्रतिघात।

क्यों हो रहा है ऐसा ? कारण स्पष्ट है। हमारे कुछ अपने ही हमसे अलग हो गये हैं। उन्होंने अपना एक अलग दुनिया बना ली है– दौलत की दुनिया। और अपने सोने की लंका की रक्षा के लिए वे हर इस कृत्य को करने में भी नहीं हिचकते हैं—जिसे हमारे धर्म-शास्त्रों ने अनुचित बताया है। हमारी अनमोल संस्कृति का मजाक हमारे ही देशवासी उड़ा रहे हैं। शाम, दाम, भय, भेद, घृणा उनके जीवन के आदर्श बन गये हैं। उन्होंने हमारे समाज में ऊँच-नीच का, क्षेत्रीयता का, भाषा और संस्कृति का भेद-भाव स्थापित कर दिया है। हमारे प्रत्येक उचित कदम को अपने निजी स्वार्थवश प्रारंभ में ही रोक देना उनकी प्रकृति हो गयी है। हमारा चिन्तन भी दिन-प्रतिदिन संकीर्णताओं में सिमटता जा रहा है। हम भी अपने आप को मजबूर महसूसने लगे हैं। तुच्छ स्वार्थों के कारण, क्षणिक सुख-भोग की खातिर हम अपने चित्त को अशान्त करने पर मजबूर-सा होते जा रहे हैं। स्वार्थपरता और संकीर्णता ही जैसे हमारी सभ्यता का रूप लेने लगी है। यह भी सच है कि अगर हम स्वार्थ की संकीर्णताओं में सिमटते चले जायेंगे तो विनाशकारी विस्फोट अवश्यंभावी हो जायगा। विस्फोट-एक विध्वंसकारी विस्फोट, जो हमारी मनुष्यता को स्वाहा कर देगा।

और ऐसे ही क्षणों में हमें फिर अपना ध्यान देना होगा अपने स्वामीजी की ओर। उन्हीं के चरणों में हमारा कल्याण है। उनके तेजोद्दीप्त कथन की प्रासंगिकता हमें नयी आशा देती है।

"प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाई-मनुष्यजाति-को प्यार करते हो ? ईश्वर को कहाँ ढूँढ़ने चले हो—ये सब गरीब, दुःखी' दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नहीं हैं ? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते ? गंगातट पर कुआँ खोदने क्यों जाते हो ? प्रेम की असाध्यसाधिनी शक्ति पर विश्वास करो।"

तो फिर अगर हम युवक को जीतना चाहते हैं तो उसे प्रेम करना होगा। प्रेम की बड़ी शक्ति है। यह सचमुच ही भटके युवकों को सच्चा और समर्थ युवक बनाकर उन्हें निर्माण में लगा सकता है। युवजनों की असीम उर्जाशक्ति को संचित कर एक नया रूप दिया जा सकता है भारत का—प्रेम से।

+

धारावाहिक

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

— चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

"एक बार ठाकुर मुझे साथ लेकर ईशान बाबू (श्री ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय) के घर गये। ईशान बाबू के घर अनेक पण्डित आये हुए थे। वे लोग आपस में श्लोक बोल रहे थे। एक ने तो बात ही बात में एक ऐसा श्लोक बना दिया कि सभी हँस पड़े थे। इस पर ठाकुर ने कहा—'अजी तुम लोग इतना हँस क्यों रहे हो? तुम लोगों में क्या बातें हो रही हैं?' तब पण्डित लोगों ने उन्हें वह श्लोक सुनाया और उसका अर्थ बताया। एक ने उसका अर्थ किया—'अन्नचिन्ता चमत्कारा,' और दूसरे ने उसी का अर्थ लगाया—'भगवान का चिन्तन अच्छी चीज है।'

"ईशान बाबू बीस-पच्चीस तरह के व्यंजन बनवाकर उन्हें खिलाते थे। उनके घर का भोजन ठाकुर को बड़ा पसन्द था। एक दिन उनके घर उन्होंने अनेक प्रकार के अचार खाये थे।"

"एक बार वे (ठाकुर) मुझे साथ लेकर ईशान बाबू के घर से शशधर पण्डित से मिलने गये थे। उन्होंने उनसे (प० शशधर तर्कचूड़ामणि से) कहा—'देखो जी! चपरास 'ईश्वरीय आदेश' पाये बिना कोई किसी की बात नहीं सुनता। तुम्हें क्या उनका आदेश मिला है?' इस पर पण्डितजी मौन रह गये। करीब पाँच दिन बाद पण्डितजी (उनसे मिलने) दक्षिणेश्वर आये। उसके बाद से वे बीच बीच में दक्षिणेश्वर तथा कलकत्ता में आकर ठाकुर से भेंट किया करते थे।...ईशान बाबू ने एक बार भाटपाड़ा में पुरश्चरण किया था। वहाँ से उनके आने पर उन्होंने (ठाकुर ने) उनसे कहा था—'देखो ईशान! मन अच्छा होने पर देह शुद्ध होने में अधिक समय नहीं लगता परन्तु मन में काम अथवा आसक्ति रहने पर देह शुद्ध करने में काफी समय लगता है। देह और मन को एक साथ ही शुद्ध न कर पाने पर तपस्या में दृढ़ता नहीं रहती।'"

काशी में एक बार एक भक्त कोई चीज अधिक कीमत देकर ले आये थे। इस पर लाटू महाराज ने दक्षिणेश्वर की एक घटना बतायी थी। दक्षिणेश्वर-निवास काल की घटना होने के कारण हम उसे यहीं योग कर रहे हैं।

"देखो! एक बार उन्होंने (ठाकुर ने) योगीन भाई को लोहे की एक कड़ाही लाने को कहा था। योगीन भाई उसे अच्छी तरह देख-भाल कर नहीं लाये। इस पर ठाकुर ने उनसे कहा था—क्यों रे? चीज को देखकर नहीं लाया? यह तो थोड़ा फटा हुआ है, यह काम में नहीं आएगा। जा बेटा! फिर से बदलकर ले आ। देखना, इस बार दुकानवाले की बात पर विश्वास न करना। दुकानदार वहाँ व्यवसाय करने बैठा है, धर्म करने तो नहीं बैठा। उसकी बातों में आकर ठगे क्यों जाओगे? भक्त होगे तो इस कारण बुद्धू क्यों होगे? लोग तुझे ठग लेंगे। यह तेरा कैसा भाव है बेटा! मेरी तो समझ में नहीं आता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वाजिब कीमत देकर ठीक-ठीक चीज लेनी होगी। कीमत देने के पहले देख लेना कि ठीक वस्तु तथा ठीक वजन मिला अथवा नहीं। इतना

ही नहीं, जिन सब चीजों में ऊपर से घाता मिलता है, उनकी कीमत चुकाने के पहले घाता माँगना चाहिए। समझे !' इसीप्रकार ठाकुर ने योगीन भाई को समझाया। वे तो संन्यासी थे, तो भी उनका ऐसा उपदेश था ! और तुम लोग गृहस्थ होकर भी ऐसी फिजूल खर्ची क्यों करते हो ? इतनी कीमत की चीज मेरे लिए लाने की क्या आवश्यकता थी ? मेरा तो इतने से ही काम चल जाता, तुमने इतना खर्च क्यों किया ?"

बलराम मन्दिर में उन्होंने निम्नलिखित घटना बतायी थी जो 'दक्षिणेश्वर' अध्याय में ही दिये जाने के उपयुक्त है।

"एक बार योगीन भाई के सामने ही एक व्यक्ति ठाकुर की बड़ी निन्दा करने लगा। योगीन भाई की उन दिनों ऐसी अवस्था थी कि वे इसका बिल्कुल भी प्रतिवाद नहीं कर सके। साधना काल में एक ऐसी अवस्था आती है जब किसी व्यक्ति पर भी हाथ नही उठाया जा सकता, किसी पर भी क्रोध नहीं आता। उसी अवस्था में योगीन भाई को उनकी निन्दा तक सहन करनी पड़ी थी। दो-चार दिन बाद यह बात ठाकुर के कानों में भी पड़ी। वे मन ही मन जानते थे कि योगीन भाई किस कारण कुछ बोल नहीं सके थे, परन्तु हम लोगों को शिक्षा देने के लिए उन्होंने (ठाकुरने) क्या कहा था जानते हो ?—'अरे यहाँ की (मेरी) निन्दा की, और तू चुपचाप सुन आया। गुरुनिन्दा नहीं सुननी चाहिए। क्षमता रहने पर उसे सजा देनी चाहिए, नहीं तो वहाँ से उठ कर चले आना उचित है।' योगीन भाई उनकी बात पर मौन रहे।"

इसके साथ ही साथ उन्होंने एक अन्य घटना का भी उल्लेख किया था, वह भी दक्षिणेश्वर में ही घटित हुई, परन्तु योगीन महाराज से सम्बन्धित नहीं है। उसका भी यहीं वर्णन कर रहे हैं। —"देखो ! इसीप्रकार की एक घटना निरंजन भाई के साथ भी हुई थी। निरंजन भाई उस समय नाव में थे। उन्होंने ज्योंही ठाकुर की निन्दा सुनी कि नाराज होकर पूरी नाव को ही खूब झकझोरने लगे। नाव में बैठे सारे यात्री भयभीत हो उठे। डर के मारे उन लोगों ने ठाकुर की निन्दा बन्द कर दी। दक्षिणेश्वर पहुँचकर सब कुछ उन्हें बताया। सुनकर ठाकुर निरंजन भाई पर बड़े नाराज हुए थे और उन्हें कहा था—'लोगों को तू डुबाने ही वाला था ? यह कैसी बात रे ? ऐसा क्रोध तो देखा नहीं बेटा ! हो सकता है कि किसी एक ने मेरी निन्दा की होगी, तो क्या एक आदमी के लिए नाव के सारे लोगों को सजा देनी होगी ? यदि नाव डूब ही जाती तो बोल इतने लोगों की क्या हालत होती ? खबरदार ! क्रोध कभी न करना। एक आदमी के दोष पर हजार लोगों को दण्ड देगा, ऐसा विधान तो कहीं देखने में नहीं आया।' ठाकुर की बात सुनकर निरंजन भाई के नेत्र छलछला आये थे।"

ऐसी ही एक और घटना भी हुई थी, पर दक्षिणेश्वर में नहीं, अपितु उनके दक्षिणेश्वर-निवास काल में ही नरेन्द्रनाथ के घर हुई थी। हम लोगों ने यह घटना लाटू महाराज के मुख से बलराम-मन्दिर में सुनी थी। उनके दक्षिणेश्वर निवासकाल के सेवक जीवन का प्रसंग होने के कारण उसे हम यहीं लिपिबद्ध कर रहे हैं।

"एक वकील ने लोरेन बाबू के समक्ष ठाकुर को इडियट् (Idiot) कहा था। इस पर लोरेन बाबू ने उसके साथ खूब तर्क छेड़ दिया। परन्तु इस पर भी वह मानने को तैयार नहीं हुआ। तब लोरेन बाबू हँसते हुए बोले—'वे (ठाकुर) तो गाँव के आदमी हैं तो तुम्हारी दृष्टि में उनका इडियट होना स्वाभाविक ही है।' यह बात सुन कर वकील बाबू हँसते हुए चल दिये। उसके (वकील बाबू के) चले जाने पर मैंने लोरेन बाबू से कहा—'यह आपकी कैसी बात हुई लोरेन बाबू ! ऐसी बात भी क्या जबान पर लानी चाहिए ? उन्हें (ठाकुरको) इडियट् कहा और आप सह गये, उनकी बात मान गये, ऐसी बेअदबी की बात आपको मान्य कैसे हुई ?' मेरी बात सुनकर लोरेन बाबू हँसते हुए बोले—'अरे' ! तू समझा नहीं, इस समय उसके साथ तर्क-वितर्क करने में मेरा बहुत सा समय बेकार चला जाता, देखा कि थोड़ा मान लेने पर वह खुशी-खुशी चला जायगा। इसीलिए उसके सामने ऐसी बात कही। तू (मेरी तरफ संकेत कर) तो भाई मेरे दिल की बात जानता है। मैं ठाकुर को क्या मानता हूँ, यह तो तू जानता है।' तो भी मेरे मन में यही आता रहा—'लोरेन भाई ने ऐसी बात मान कैसे ली ?' लोरन भाई ने मेरे मन की बात ताड़ ली और बोले—'भाई, नाराज न हो ! अब कभी तेरे सामने एसी बात न कहूँगा।" (क्रमशः)

वैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

स्मृति

कफ खांसी नाशक

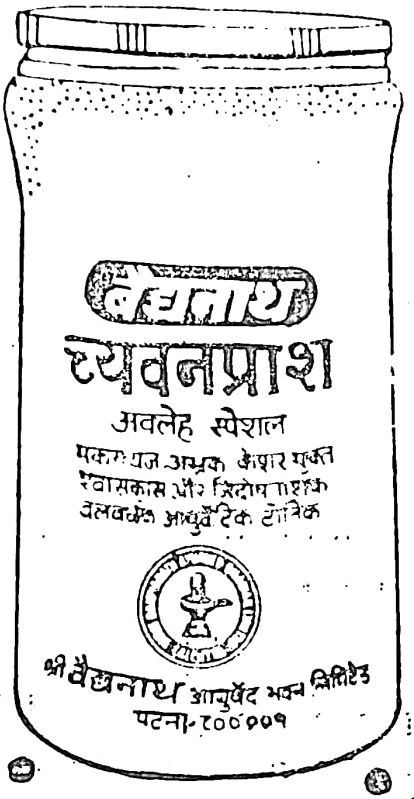

यौवन

दिमागी ताजगी में

विकास

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

वैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

वैद्यनाथ भवन रोड, पटना-९

डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी०—१४-८१ अंक—१३—१८८

स्वामी विवेकानन्दकृत योग पर विख्यात पुस्तकें

ज्ञानयोग :— रु० ११.००

वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का सरल, स्पष्ट तथा सुन्दर रूप से विवेचन।

राजयोग (पातंजल **योगसूत्र**, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित) :— रु० ९.००

प्राणायाम-ध्यान-धारणा द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति के विषय में उपयोगी सूचनाएं और मार्गप्रदर्शन।

कर्मयोग :— रु० ६.००

'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' इस आदर्श के अनुसार कर्म किस प्रकार किये जाएं, जिससे वे परम शान्ति का निदान बनें—इस रहस्य का विवरण।

भक्तियोग :— रु० ४.००

भक्ति का सच्चा अर्थ, सच्चे भक्त का जीवन तथा भक्तिमार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर होने के लिए आवश्यक गुण तथा साधनाएँ—इस विषय का अत्यन्त रोचक एवं मौलिक दर्शन।

प्रेमयोग :— रु० ५,००

प्रत्येक मानव के हृदय में निहित महान् शक्ति प्रेम का जीवन के सर्वोच्च ध्येय भगवत्प्राप्ति के लिए उपयोग किस प्रकार करें, इसका अत्यन्त भावपूर्ण विवेचन।

❀ ❀ ❀

स्वामी विवेकानन्द के दस भागों में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य में से विशेष महत्वपूर्ण व्याख्यानों, प्रवचनों, लेखों, पत्रों, सम्भाषणों एवं कविताओं का प्रातिनिधिक संकलन

विवेकानन्द साहित्य संचयन

मूल्य : १०.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए : —

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर—४४० ०१२

आनन्द डाइजेस्ट

पारिवारिक मासिक पत्रिका

के सौजन्य से

श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।